घोष परिचय

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुंज, झण्डेवाला, नई दिल्ली - 110055

घोष परिचय

प्रकाशक
सुरुचि प्रकाशन
केशव कुंज, झण्डेवाला,
नई दिल्ली - 110055
दूरभाष : 011-23514672, 23634561
E-mail : suruchiprakashan@gmail.com
Website : www.suruchiprakashan.in

© सुरुचि प्रकाशन

प्रथम संस्करण : सितम्बर, 2015

मूल्य : ₹ 00

पृष्ठ संयोजक : अमित कुमार
मुद्रक :
ISBN : 978-93-84414-44-3

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय		पृष्ठ सं.
उपोद्घात			5
1.	वाद्य	: सामान्य जानकारी एवं समता	7
		वाद्यों के प्रकार	
		आनक, शारिका-पकड़ना, आनक-समता	8
		पणव, पणव-समता	13
		त्रिभुज, त्रिभुज-समता	15
		झल्लरी, झल्लरी-समता	16
		वंशी, वंशी-समता	17
		शंख, शंख-समता	20
2.	घोष समता	: घोष-साधनम्	22
		घोष-समता	24
		वादन-प्रारंभ	26
3.	घोषदण्ड एवं संकेत	: घोषदण्ड	27
		घोषदण्ड-समता	28
		घोषदण्ड-संकेत	29
4.	घोष प्रमुख का दायित्व :		38
5.	वाद्यों की व्यवस्था तथा शोभा :		40
6.	स्वर लेखन	: i) स्वर	42
		ii) स्वरसप्तक	43
		iii) राग	43
		iv) स्वराक्षर	44
		v) ध्वन्याक्षर	46

vi) मात्रा 47
vii) मात्रांश 47
viii) अवग्रह 47
ix) यति 48
x) ताल 49
xi) रणन 52
xii) लय 54
xiii) संक्षेप-चिन्ह 54
xiv) स्वरांतर 55
xv) लयभंग 57
xvi) दीर्घयति 57
xvii) रचना लेखन 58

7. उपसंहार 60

उपोद्घात

'संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्'

संगठन का संदेश देने वाला उपरोक्त वेदमंत्र कहता है कि कदम से कदम मिलाकर चलने और स्वर से स्वर मिलाकर बोलने से मनों का मिलन होता है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ समग्र हिंदु समाज को संगठित करने के लिए कटिबद्ध है। इस लिए संघ में सामूहिक व्यायाम, समता, संचालन, खेल आदि को विशेष प्राधान्य दिया गया है। सांघिक कार्यक्रम, सांघिक समता, संचलन आदि के साथ सुस्वर लयतालबद्ध घोषवादन भी हो तो सोने में सुहागे की बात बनती है। घोष के कारण इन कार्यक्रमों में भव्यता, सांघिकता, उत्साह, व लयबद्धता की निर्मिति होती है। यही कारण है कि हम संघ के कार्यक्रमों में प्रायः प्रारंभ से ही घोष का प्रयोग करते आएं हैं।

प्राचीन काल की सेनाओं में शंख, नगाड़े, तुरही, ढोल आदि वाद्यों के प्रयोग का उल्लेख मिलता है। जैसा कि, श्रीमद्भगवद्गीता (अ.1, श्लोक 13) में

ततः शंखाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः
सहसैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥

'वाद्यों के एक साथ बजने के कारण तुमुल शब्द हुआ' इसी प्रकार "शिवतंत्र-नटराजनृत्य" में निम्नलिखित श्लोक देखने को मिलता है:-

"डमरू डिम डिमः मृदंग ढोलकः निनादः ।
वंशी मृदुभाषी झंकृत झल्लरी भाषे ॥
ढमढम पणवः संगति साधति आनकः ।
आह्वति शंख अभिनव शृंगघोषे ॥

किंतु उन वाद्यों द्वारा सैनिकों में युद्धोन्माद उत्पन्न करने के अतिरिक्त समता, संचलन में प्रमुख किसी प्रांगणीय वादन की परंपरा हमारे अतीत में

थी या नहीं, इस संबंध में अधिक कुछ ज्ञात नहीं हो पाया है। उसी प्रकार अपने प्राचीन संगीत ग्रंथों में सैन्य-व्यूह, समता, संचलन आदि के लिए वाद्यों का प्रयोग तथा तत्संबंधी रचनाओं की जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। ऐसी स्थिति में हमें पाश्चात्य देशों में विकसित घोष पद्धति को अंगीकार करना क्रमप्राप्त था।

दिसंबर 1926 में केवल एक शंख तथा एक ही आनक के साथ संपन्न हुए संघ के प्रथम पथ-संचलन से हमें आनंद और गौरव की अनुभूति अवश्य हुई थी। परंतु केवल उतने से न हम संतुष्ट थे, न ही अंध परानुकरण हमें अभिप्रेत था। उसके पश्चात्, अब तक संघ ने न केवल विभिन्न वाद्यों का अपने घोष में समावेश किया है, वरन् घोष की मूल संकल्पनाओं तथा रचनाओं का भारतीयकरण करने की दिशा में अनेक दृढ़ कदम बढ़ाएं हैं। भारतीय रागों और तालों पर आधारित अनेक नवीन रचनाओं का निर्माण एवं प्रत्यक्ष प्रयोग किए हैं। इस प्रकार संघ ने घोष को भारतीय रागदारी के आधार पर सुगठित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है।

यह पुस्तक कोई घोष या संगीत का विवेचनात्मक ग्रंथ नहीं है; न ही इस में संगीत की विविध पद्धतियों के शास्त्रों की गहराई में जाने का प्रयास किया है। संघ की आज की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सकें इस दृष्टि से 'सामान्य वादकों के लिए सूचनाएं तथा दिशानिर्देश' इतना मात्र इसका स्वरूप रखा गया है।

* * *

1. वाद्य- सामान्य जानकारी एवं समता

वाद्यों के प्रकार

1) **सुषिर वाद्य** :- सुषिर वाद्य फूंक कर बजाएं जाते हैं। इन में वंशी, नादस्वर, शहनाई, स्वरद आदि वंशीज वाद्य तथा शंख, शृंग, प्रतूर्य, गोमुख, पौंड्र, वेणु आदि शंखज वाद्यों का समावेश होता है। कंपित पत्ती, अवरुद्ध वायु आदि के कारण इनमें से ध्वनि उत्पन्न होती है।

मुंह में डालकर बजाए जाने वाले वाद्य 'वंशीज', तथा होंठों पर रखकर बजाए जाने वाले वाद्य 'शंखज' कहलाते हैं।

2) **अवनद्ध वाद्य** :- इसे चर्मवाद्य भी कहा जा सकता है। इनमें आनक, पणव, तबला, मृदंग, खर्जानक, पखवाज, चंडे, ढोल आदि का समावेश होता है। तने हुए चर्म अथवा प्लास्टिक आवरण पर हाथ अथवा शारिका से आघात करने से इन वाद्यों में ध्वनि उत्पन्न होती है।

3) **घन वाद्य** :- धातु के वाद्य, जैसे त्रिभुज, झल्लरी आदि का इसमें समावेश होता है। नादकारक धातु पर आघात करने से इन वाद्यों में कंपन तथा उसके फलस्वरूप ध्वनि निर्माण होती है।

4) **तत वाद्य** :- अर्थात् तंतुवाद्य। ताने हुए तार में कंप तथा उससे ध्वनि उत्पन्न होती है। इसमें सितार, सारंगी, वीणा, वायोलिन, सन्तुर आदि का समावेश होता है। तत वाद्यों का प्रयोग हमारे घोष में नहीं होता, क्योंकि वे नाजुक होते हैं; तथा इन वाद्यों की आवाज दूर तक नहीं जाती है। इसलिए प्रांगणीय वादन के लिए ये वाद्य उपयुक्त नहीं हैं।

सामान्यत: जिन वाद्यों का सर्वत्र प्रयोग किया जाता है, उन तथा तत्संबंधित समता के बारे में संक्षिप्त जानकारी यहां प्रस्तुत है।

आनक

आनक का कोश साधारणत: 28 से.मी. ऊँचा, तथा 36 से.मी. व्यास का पीतल, अल्युमिनियम, स्टेनलेस-स्टील, लकड़ी अथवा फायबर का बनाया हुआ दण्ड गोलाकार तथा दोनों ओर खुला रहता है। दोनों ओर चर्म अथवा प्लास्टिक का आवरण लगाया जाता है। यह आवरण पहले धातु या लकड़ी के 'अंतर-वलय' पर चढ़ाया जाता है। ऐसे आवरणांकित अंतर-वलय के ऊपर धातु या लकड़ी का ही 'बाह्यवलय बिठाया जाता है। दण्ड गोलाकार कोश के दोनों ओर बाह्यवलय रखने के बाद रस्सी द्वारा बांधकर या धातु के शलाकाओं द्वारा कसा जाता है। दोनों बाह्यवलयों को कसकर आवरणों को ताना जाता है। रस्सी कसने के लिए प्रयुक्त चमड़े या अन्य माध्यम के साधान को 'चर्मबंध' कहते हैं। एक आनक में ऐसे आठ चर्मबंध या पांच-छ: कसने की शलाकाएं (रॉड) होती हैं। आनक के ऊपर वाले बाह्यवलय पर एक 'हुक' लगा रहता है, जिसे 'सृणि' कहते हैं। इसी के सहारे आनक पट्टे से लटकाया जाता है। इसी बाह्यवलय पर आनक के छोटे-छोटे 'क्षुर' (पाए) भी होते हैं, जिनके आधार पर आनक जमीन पर रखा जाता है । आनक के नीचे वाले आवरण पर 'तांत' या लोहे का स्प्रिंग तानकर बांधा जाता है। इसे कसने के लिए एक 'नट' की व्यवस्था रहती है। इससे 'रणन' की प्राप्ति तथा नियंत्रण में सुविधा होती है। इसीलिए इसे 'कंपन-नियंत्रक' भी कहा जा सकता है। (रणन का विवरण आगे दिया है।)

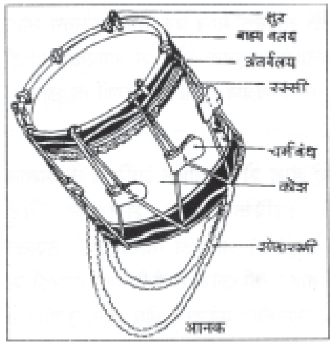

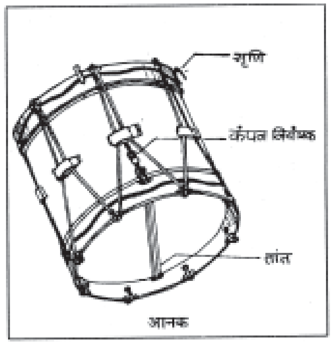

आनक का पट्टा दाहिने कंधे से कमर की बायीं ओर आवे इस तरह धारण किया जाता है। इस पट्टे से लटकाने पर आनक का नीचे वाला बाह्यवलय साधारणत: बाएं घुटने के ऊपर रहना चाहिए । आनक का वादन शारिकाओं के आघात से होता है। इसमें एक ही प्रकार का नाद उत्पन्न होता है; जिसे 'तंकार' कहते हैं ।

शारिकाएं पकड़ने की पद्धति

दाहिने तथा बाएं हाथ से शारिका पकड़ने की पद्धति निम्नानुसार होगी।

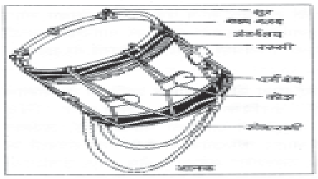

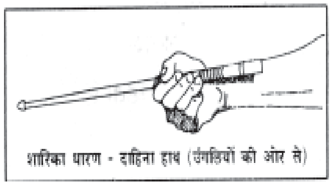
शारिका धारण - दाहिना हाथ (उंगलियों की ओर से)

दाहिने हाथ से :- सामान्यत: शारिका के मोटे छोर से 10 या 12 सें. मी. पर आनेवाले शारिका के संतुलन-बिंदु को दाहिने हाथ के अंगूठे तथा तर्जनी के मध्य में रख कर, मोटे छोर वाला हिस्सा अंगूठे के नीचे हथेली के मांसल भाग पर, और उसका मोटा छोर मणिबंध के मध्य पर। तर्जनी, मध्यमा तथा अनामिका इनके छोर से शारिका पकड़ी हुई स्थिति में। अंगूठे का छोर तर्जनी पर। शारिका का नियंत्रण तीनों उंगलियों के छोर से करना।

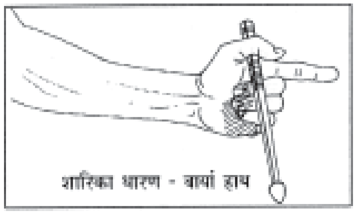
शारिका धारण - बायां हाथ

बाएं हाथ से :- दाहिने शारिका के समान ही बाएं शारिका का संतुलन बिंदु आएगा। अंगूठे से शारिका पकड़ी हुई, उसका मोटा छोर बाहर की ओर; तर्जनी तथा हथेली से सामान्यत: समकोण रहेगा। शेष तीन उंगलियां हथेली को न चिपके ऐसी स्थिति में मुड़ी हुई तथा मध्यमा के छोर के आधार पर शारिका टिकी हुई। शारिका का नियंत्रण अंगूठे से करना।

आनक समता

1) **दक्ष :-** बायां हाथ ऊपरी बाह्यवलय पर बायीं ओर रखा हुआ, शारिका आनक मध्य पर। दाहिनी शारिका वलय के ऊपर दाहिनी ओर, मुट्ठी वलय के बाहर। दाहिनी शारिका बायीं शारिका पर आनक के मध्य में साधारणत: 90 से 100 अंश का कोण बनाती हुयी।

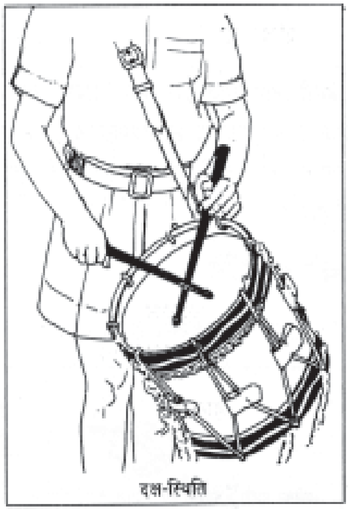
दक्ष-स्थिति

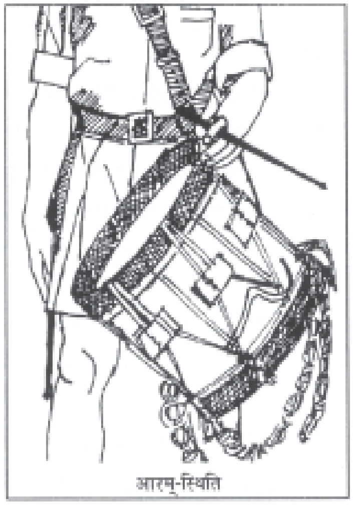
आरम्-स्थिति

2) **आरम् :-** बायां पैर बाजू में, दाहिना हाथ दाहिने पैर से सटा हुआ, शारिका का छोटा छोर जमीन की ओर, तर्जनी शारिका के ऊपर, बायां हाथ वलय पर ही रख कर, शारिका सामने से तिरछी जमीन की ओर।

(आरम् से दक्ष करते समय शारिकाएं परस्पर एक बार टकराना।)

३) **स्थलानक :-** **वि. 1.** दाहिने हाथ से ऊपरी बाह्यवलय को सृणि के पास तथा बाएं हाथ से निम्न वलय को ठीक दाहिने हाथ के नीचे पकड़ना। **वि. 2.** सृणि को पट्टे के छल्ले से निकालकर आनक सामने की ओर जमीन के समानांतर, दोनों हाथों से सहज स्थिति में पकड़ना। **वि. 3.** नीचे झुककर, आनक अपने सामने उसकी तांत ऊपर आए ऐसी स्थिति में रखना। (इससे सब आनकों का सम्यक् ठीक रहेगा) इस स्थिति में 'प्रचल' अपेक्षित होने पर, एक पद 'दक्षिण/वाम सर' करते हुए 'प्रचल' कर सकते हैं । **वि. 4.** दक्ष, दोनों शारिकाओं के छोर जमीन की ओर।

4) **स्कंधानक :-** **वि.1.** सामने झुक कर (स्थलानक **वि. 3.** के अनुसार) आनक को दाहिने हाथ से सृणि के पास तथा बाएं हाथ से ऊपर के बाह्यवलय को पकड़ना। **वि.2.** स्थलानक के **वि.2.** की स्थिति। **वि. 3.** बाएं हाथ की सहायता से सृणि को पट्टे के छल्ले में बिठाकर दोनों हाथ उसी स्थिति में। **वि. 4.** दक्ष स्थिति।

सांघिक क्रिया आने की दृष्टि से 'स्थलानक' तथा 'स्कंधानक' आज्ञाएं विभागश: में देना उचित रहेगा।

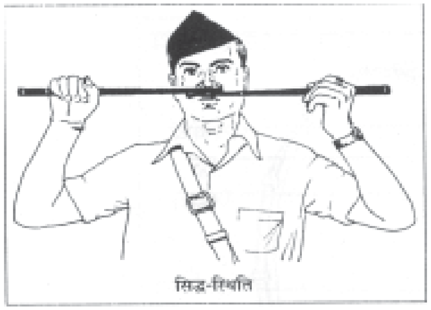
सिद्ध-स्थिति

5) **सिद्ध :-** दोनों हाथ ऊपर उठाकर शारिकाओं को नाक के नीचे एक सरल रेखा में जमीन से समांतर इस प्रकार से पकड़ना कि शारिकाओं के नुकीले छोर का लगभग 5 सें.मी. हिस्सा एक दूसरे से सटा रहे। दाहिने शारिका ऊपर तथा बायीं नीचे रहेगी। हाथ सहज स्थिति में।

6) **अवनम :-** सिद्ध स्थिति से दक्ष स्थिति में आने के लिए अवनम आज्ञा का प्रयोग करते हैं। 'सिद्ध' से 'दक्ष' में आते समय शारिकाएं परस्पर एक बार टकराना।

7) **प्रचल :-** **'1' की स्थिति** - बायां पैर तथा दाहिना हाथ आगे, दाहिनी तर्जनी शारिका पर और शारिका सामने हाथ की सीध में। बायां हाथ 'दक्ष' जैसी स्थिति में। **'2' की स्थिति:-** दाहिना पैर आगे, बायां हाथ वृत्ताकर घुमाते हुए ऊपर, 'सिद्ध' स्थिति के अनुसार, बायीं शारिका का छोर नाक के नीचे, दाहिना हाथ पीछे।

8) **प्रार्थना के समय** :- दोनों शारिकाएं बाएं हाथ में, दाहिना हाथ प्रार्थना की स्थिति में।

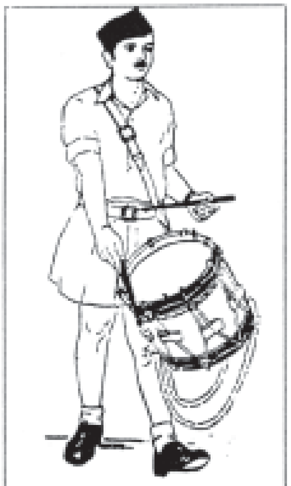

प्रचल १ की स्थिति

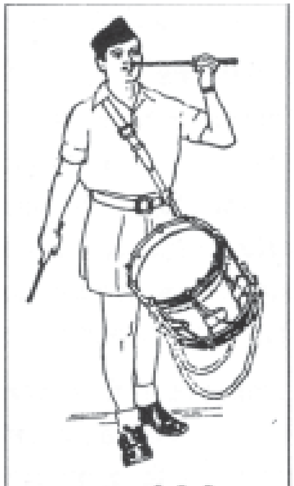

प्रचल २ की स्थिति

सूचना :- वादन प्रारंभ के रणन में तथा चरणान्त पर जब यति आती है, तब शारिकाएं 'सिद्ध' स्थिति में लानी चाहिए।

पणव

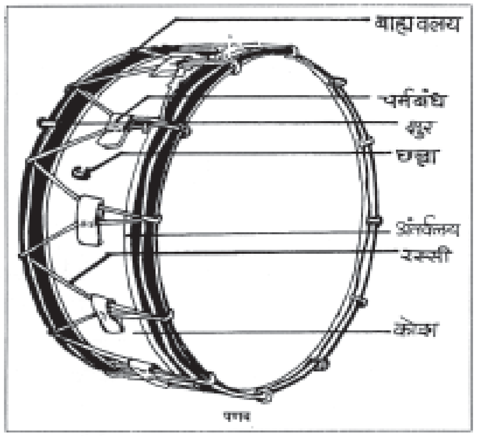

पणव

पीतल, अल्युमिनियम, स्टेनलेस-स्टील, लकड़ी या फायबर से बना यह वाद्य आनक जैसा ही किंतु व्यास में बड़ा होता है। सामान्यत: घोष में 72 सेंमी. व्यास तथा 28 सें.मी. ऊँचाई का पणव उपयोग में लाते हैं। इसके कोश के दोनों ओर, आनक जैसा ही, चर्म या प्लास्टिक का अवरण लगया जाता है। किंतु इस में तांत नहीं होती। इसके दोनों आवरणों पर 'तालक' से आघात कर ध्वनि निर्माण की जाती है, जिसे 'ध्वंकार' कहते हैं।

तालक सामान्यत: बेंत का होता है। इसके एक छोर पर ऊन का गोलक होता है, जिससे पणव बजाया जाता है। तालक के दूसरे छोर पर एक फंदा होता है, जिसमें हाथ डालकर तालक के बेंत वाले छोर को पकड़ा जाता है।

पणव को पट्टे की सृणि में लटकाने के लिए उसके कोश के बहिर्भाग पर मध्य में एक छल्ला रहता है।

घोष में पणव का स्थान महत्वपूर्ण है। उसकी ध्वनि बहुत दूर तक पहुंचती है। वादन की लय संभालना, ध्वंकार-द्वय बजाकर संकेतों की ओर वादकों का ध्यान आकर्षित करना, यह पणव-वादक का काम है।

पणव समता

1) **दक्ष** :- हाथ सीधे नीचे 'दक्ष' की स्थिति में, तालक का ऊनी गोलक हाथ की सीध में नीचे, तर्जनी बेंत पर सीधी, शेष तीन उंगलियां तथा अंगूठे से तालक पकड़ा हुआ।

2) **आरम्** :- आरम् की स्थिति, हाथ तालक के साथ पीछे; बाएं तालक पर दाहिना तालक।

3) **स्थलानक** :- आज्ञा होते ही, आनक के साथ पणव भी नीचे रखना चाहिए। 'स्थल-पणव' ऐसी स्वतंत्र आज्ञा नहीं है। विभागश: '1' और '2' पर, तालक हाथ में रखते हुए, दोनों हाथों से पणव के

बाह्यवलय पकड़कर, पणव को पट्टे की सृणि से बाहर निकालना । '3' स्थलानक' में जैसे आनक सामने रखा जाता है, उसी तरह पणव भी सामने रखना चाहिए। '4' 'दक्ष' की स्थिति।

(उपविश के बाद समारंभ या अन्य संदर्भ में यदि अधिक समय तक बैठने की अपेक्षा हो, तो पणव-वादक पणव को, आनक की तरह,क्षुरों के आधार पर जमीन पर रखेगा।)

4) **स्कंधानक :-** यही आज्ञा पणव को भी लागू होती है। **वि.1.** झुककर पणव को पकड़ना। '2' और '3' पणव को उठाकर सृणि में लटकाना। '4' 'दक्ष' की स्थिति।

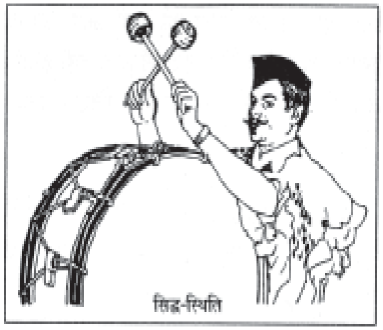
सिद्ध-स्थिति

5) **सिद्ध :-** दोनों हाथ शरीर से कुछ ऊपर उठाना, शरीर और हाथों में साधारणत: 135 अंश का कोण रहेगा, कोहनियां किंचित् मुड़ी हुई । तालकों के मध्य भाग में समकोण रहेगा।

6) **अवनम :-** वापस 'दक्ष' स्थिति में।

7) **प्रचल :-** संचलन पद्धति के अनुसार हाथ हिलाना। तालक की स्थिति 'दक्ष' के समान।

8) **स्तभ् :-** समता पद्धति के अनुसार 'स्तभ्' करना।

9) **प्रार्थना के समय :-** दाहिना हाथ प्रणाम की स्थिति में। तालक 'दक्ष' जैसी स्थिति में।

त्रिभुज

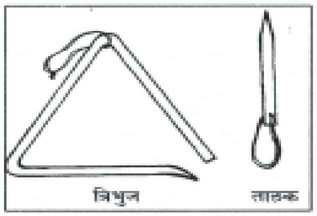

इस्पात के त्रिकोण आकृति वाद्य से, इस्पात के ही तालक द्वारा आघात करने पर जो ध्वनि निकलती है, उसे 'टंकार' कहते हैं।

त्रिभुज-समता

1) **दक्ष :-** त्रिभुज बाएं हाथ में डोरी से पकड़ा हुआ। दाहिना हाथ में तालक, दाहिनी तर्जनी तालक पर; दोनों हाथ सीधे नीचे 'दक्ष' की स्थिति में।

2) **आरम् :-** बायां पैर बायीं ओर। बाएं हाथ के ऊपर दाहिना हाथ। दोनों हाथ शरीर के पीछे।

3) **सिद्ध:-** त्रिभुज की वादन-भुजा सामने कमर के ऊँचाई के ऊपर। दाहिना हाथ उठाया हुआ, वादन की स्थिति में।

4) **अवनम:-** वापस 'दक्ष' स्थिति में।

5) **प्रचल :-** बायां हाथ 'दक्ष' के अनुसार स्थिर, दाहिना हाथ हिलाना।

6) **स्तभ् :-** समता के अनुसार स्तभ् करना।

7) **प्रार्थना के समय :-** बायां हाथ सीधा नीचे। तालक के साथ दाहिना हाथ प्रणाम की स्थिति में।

झल्लरी

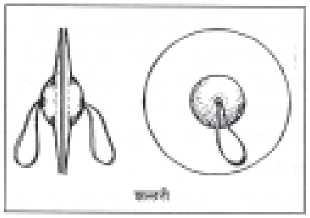

यह साधानणत: 22 से.मी. से 40 से. मी. तक, या उससे भी अधिक व्यास के, पीतल या कांसे के वृत्ताकार पतरों की जोड़ी होती है। इसके बीच का भाग गोलाई के आकार में बाहर की ओर उभरा हुआ होता

है। इस उभरे भाग के केंद्र में बाहरी ओर फंदे लगे रहते हैं, जिनमें हाथ डालकर झल्लरी की पतरें पकड़ी जाती हैं।

झल्लरी-समता

1) **दक्ष** :- बायां हाथ बाएं झल्लरी के फंदे में फंसाकर, झल्लरी के दोनों पतरों को बाएं हाथ में पकड़ना; बायां हाथ सीधा, 'दक्ष' की स्थिति में। झल्लरी शरीर से सटी हुई। दाहिना हाथ दक्ष स्थिति में।

2) **आरम्** :- बायां पैर बायीं ओर, दाहिना हाथ पीछे; बायां हाथ दक्ष जैसी स्थिति में।

3) **सिद्ध**:- हाथ नमस्कार जैसे सीने के सामने, झल्लरी की दोनों पतरें दोनों हाथों में पकड़ी हुई।

4)**अवनम**:- दोनो हाथ नीचे, दोनों हाथों में झल्लरी रहेगी।

5) **प्रचल** :- वादन विरहित स्थिति में, झल्लरी की दोनों पतरें बाएं हाथ में पकड़ी हुई, बायां हाथ स्थिर। दाहिना हाथ संचलन के अनुसार हिलाते हुए प्रचल करना।

6) **स्तभ्** :- समता के अनुसार स्तभ् करना।

7) **प्रार्थना के समय** :- झल्लरी के दोनों पतरों के साथ बायां हाथ 'दक्ष' स्थिति में, दाहिना हाथ प्रणाम की स्थिति में।

वंशी

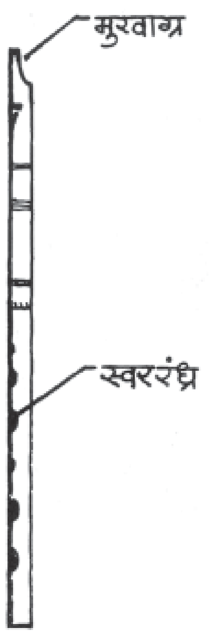

वंशी

वंशी साधारणतः पीतल, अन्य धातु, एबोनाइट, बांस अथवा प्लास्टिक की बनायी जाती है। वंशी के जिस छोर को मुंह में रखकर फूंक भरी जाती है, उसे 'मुखाग्र' कहते हैं। मुखाग्र से फूंकने पर ही स्वर प्राप्त होते हैं। वंशी में छः 'स्वर-रंध्र' होते हैं। ऊपरी तीन स्वर-रंध्रों के लिए बाएं तथा निम्न तीन रंध्रों के लिए दाहिने हाथों की तर्जनी, मध्यमा और अनामिका इन उंगलियों का क्रम से उपयोग करना चाहिए। दोनों हाथ के अंगूठे वंशी के पीछे की ओर लेकर वंशी को पकड़ना चाहिए। दोनों कनिष्ठिकाएं मुक्त रहेंगी। रंध्र बंद-खुला करने के लिए उंगलियों में सख्ती या कड़ाई लाने की आवश्यकता नहीं है। रंध्र थोड़ा सा भी खुला रहे तो अपस्वर आता है।

वंशी पर साधारणतः ढाई स्वर-सप्तक प्राप्त होते हैं। केवल बाएं तर्जनी का स्वर-रंध्र खुला (या बंद) रखकर सहजता से फूंकने पर 'मध्य-षड्ज' प्राप्त होता है। मध्य-षड्ज का रंध्र बंद करके, नीचे से एक-एक रंध्र खोलते हुए फूंकने पर, मध्य सप्तक के क्रमश ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम तथा धैवत स्वर प्राप्त होते हैं। नीचे के तीन रंध्र बंद कर ऊपरी तीन रंध्र खोलते हुए फूंकने पर मध्य-निषाद स्वर मिलता है।

सब रंध्र बंद रखते हुए हलकी फूंक लगाने पर आनेवाला स्वर 'मध्य-षड्ज' कहलाता है। फिर उपरोक्त क्रम से रंध्र खोलकर फूंकने से 'मंद्र-सप्तक' प्राप्त होता है।

ऊपरी चित्र के अनुसार 'री, ग, म, ध, नि,' ये विकृत स्वर तथा 'सं, रीं, गं, मं,' ये तार-सप्तक के स्वर भी बजा सकते हैं। वंशी रचनाओं में अधिकतर मध्य-सप्तक के सात स्वर मंद्र-सप्तक के 'प़, ध़, नि़,' तथा तारसप्तक के 'सं, रीं, गं, मं,' इन स्वरो का उपयोग किया जाता है ।

वंशी - समता

1) **दक्ष** :- तर्जनी मुखाग्र पर रखते हुए वंशी बाएं हाथ में, स्वर-रंध्र हाथ की ओर, वंशी प्रकोष्ठ से सटी हुई, प्रकोष्ठ शरीर से समकोण बनाता

हुआ जमीन से समांतर। दाहिना हाथ 'दक्ष' की स्थिति में।

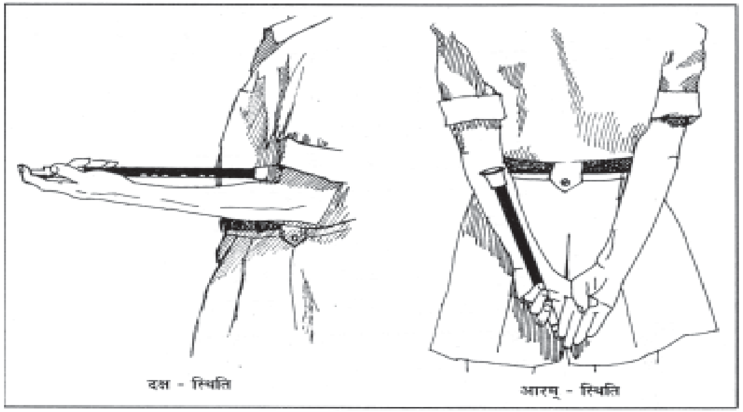

2) **आरम् :**- बायां पैर बायीं ओर। दोनो हाथ पीछे।

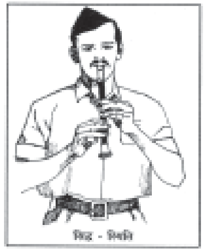

3) **सिद्ध:**- '1' वंशी के नीचेवाले तीन रंध्रों पर दाहिने हाथ की उंगलियां रखकर वंशी पकड़ना। '2' वंशी मुंह में रखना, उसी समय बाएं हाथ की उंगलियां ऊपर के तीन रंध्रों पर रखना।

4)**अवनम :**- '1' सिद्ध विभागशः 1 की स्थिति ।'2' दक्ष स्थिति।

5) **प्रचल :**- बायां हाथ दक्ष स्थिति जैसा स्थिर, दाहिना हाथ संचलन के अनुसार हिलाना।

6) **स्तभ् :**- समता के अनुसार स्तभ् करना ।

7) **प्रार्थना के समय :**- दाहिना हाथ प्रणाम की स्थिति में, बायां हाथ 'दक्ष' की स्थिति में।

वंशी स्वर सारिणी

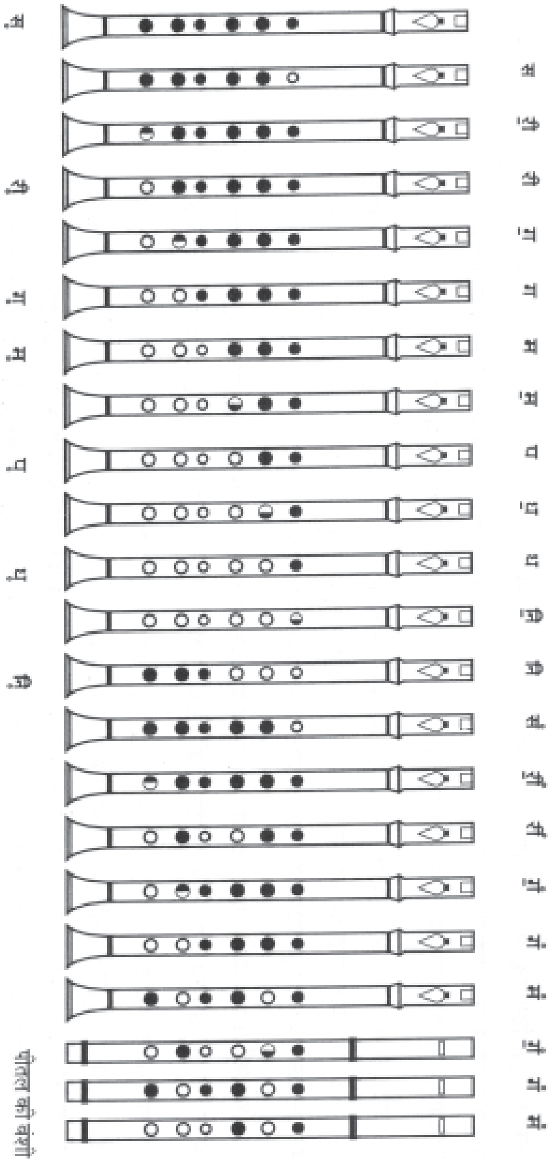

शंख

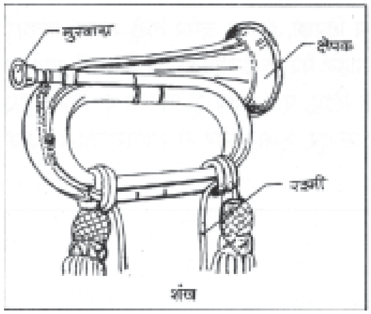

शंख

इस वाद्य में तांबे की लगभग डेढ़ से.मी. व्यास की नली अंडाकार छल्ला बनाते हुए, अंत में साधारणतः 90 से.मी. व्यास के 'क्षेपक' में समाप्त होती है। छोटे व्यास वाले छोर में पीतल या अन्य धातु का साधन बिठाया जाता है, जिसे 'मुखाग्र' कहते हैं। इस मुखाग्र में फूंकने पर क्षेपक से नाद सुनाई देता है। वंशीज वाद्यों में दी जानेवाली फूंक से यह भिन्न प्रकार की होने के कारण इसे 'फूत्कार' कहते हैं। शंख में मध्य सप्तक के '**स, ग, प**' ये तीन स्वर तथा मंद्रसप्तक के '**स़** और **प़**' इन दोनों स्वरों सहित कुल मिलाकर पांच स्वर बजाए जाते हैं। इनके आगे के सवर '**नि** तथा **सं**' भी बजाए जा सकते हैं। प्रथम पांच स्वर पूर्ण नियंत्रण के साथ विनायास आने की दृष्टि से, '**नि** तथा **सं**' का अभ्यास उपयुक्त रहेगा। परंतु रचनाओं में पूर्वोक्त पांच स्वरों का ही उपयोग किया गया है।

शंख समता

1) **दक्ष** :- शंख दाहिने हाथ से मध्य में क्षेपक के पास पकड़ना, क्षेपक का वृत्ताकार भाग दाहिनी ओर साधारणतः पट्टे के ऊपर, शंख जमीन से समानांतर, शंख का अंडाकार भाग प्रकोष्ठ से सटा हुआ, दक्ष स्थिति में दाहिने पैर की उंगलियों की दिशा में मुखाग्र रहेगा।

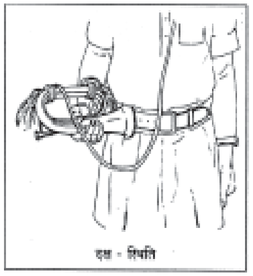
दक्ष - स्थिति

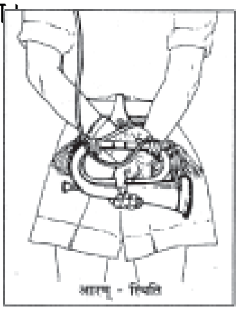
आरम् - स्थिति

2) **आरम्** :- बायां पैर बायीं ओर, दोनों हाथ पीछे, बाएं हाथ से दाहिना मणिबंध पकड़ना। शंख दाहिने हाथ में रहेगा।

3) **सिद्ध**:- '**1**' दाहिना हाथ ऊपर, कंधे से कोहनी तक का भाग जमीन से समानांतर, प्रकोष्ठ जमीन से लंबरूप। तर्जनी सीधी मुखाग्र की ओर, मुखाग्र आकाश की ओर। '**2**' दाहिना हाथ कंधे से कलाई तक सीधा ऊपर तिरछा, (शंख ऊपर लेते समय, कलाई में थोड़ा वृत्ताकार घुमाकर ऊपर लेना), क्षेपक दाहिने पैर के उंगलियों की दिशा में आकाश की ओर, मुखाग्र हाथ की सीध में। '**3**' वादन के लिए, एक दूसरे से सख्ती से चिपके हुए होंठों के मध्य में शंख का मुखाग्र, कोहनी शरीर से दूर, भुजा शरीर से साधारणतः 45 अंश का कोण बनाती हुई।

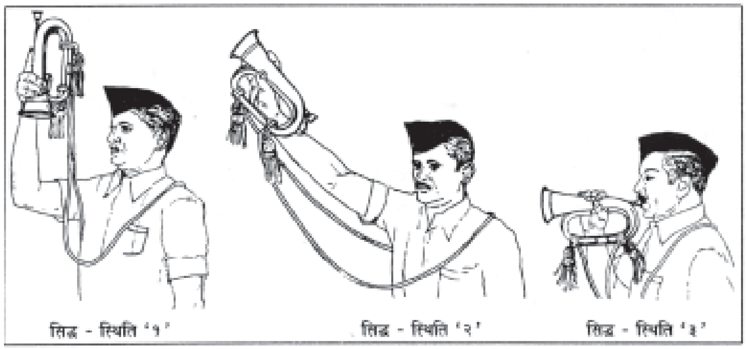
सिद्ध - स्थिति '१'

सिद्ध - स्थिति '२'

सिद्ध - स्थिति '३'

उपरोक्त क्रियाएं 'स्थिर' अथवा 'चल' में हर बाएं कदम के अंतर पर करनी चाहिए। शंखवादन संकेत के उपरान्त रणन प्रारंभ होते ही तथा चरण के अंतिम आठ अंक प्रारंभ होते ही 'सिद्ध' की क्रिया आरंभ करनी चाहिए।

4)**अवनम** :- दक्ष स्थिति में आना।

5) **प्रचल** :- बायां हाथ समता के अनुसार हिलाना, दाहिनी कोहनी का कोण कायम रखते हुए दाहिना हाथ स्वाभाविकतः कंधे से थोड़ा हिलाना।

6) **स्तभ्** :- समता के अनुसार स्तभ् करना ।

7) **प्रार्थना के समय** :- 'दक्ष' स्थिति में दाहिने हाथ में जैसा पकड़ते हैं, वैसा ही बाएं हाथ में शंख पकड़ना। दाहिना हाथ प्रणाम की स्थिति में।

2. घोष समता

घोष केंद्र में कनिष्ठतम 3 आनक-वादक, 3 शंख-वादक, 6 वंशी-वादक; पणव, त्रिभुज, झल्लरी का एक-एक वादक तथा घोषप्रमुख मिलाकर घोष की संख्या 16 होती है तथा 4 आनक-वादक, 8 शंख-वादक, 8 वंशी-वादक, पणव, झल्लरी, त्रिभुज का एक- एक वादक और घोष प्रमुख को मिलाकर घोष की संख्या 24 होती है। इस प्रकार आनक, शंख, वंशी का अनुपात क्रम से 1: 1:2 और 1: 2:2 होता है। उसी तरह 6 आनक वादक होने पर 35 का घोष बनेगा। इन को निम्नानुसार खड़ा किया जा सकता है।

प्र
आ आ आ
त्रि प झ
वं वं वं
वं वं वं
शं शं शं
(16)

प्र
आ आ आ आ
त्रि प झ
वं वं वं वं
वं वं वं वं
शं शं शं शं
शं शं शं शं
(24)

प्र
आ आ आ आ
त्रि प झ
शं शं शं शं
शं शं शं शं
शं शं शं श
आ प आ
वं वं वं वं
वं वं वं वं
वं वं वं वं
(35)

[संकेत :- प्र- घोषप्रमुख, आ- आनकवादक, वं- वंशीवादक, त्रि-त्रिभुजवादक, झ- झल्लरीवादक, शं- शंखवादक, प- पणवादक]

सभी ततियों और विततियों में दो कदम का अंतर रहेगा। अपेक्षित संख्या से कुछ कम वादक हों तो बाहरी विततियां तथा पिछली तति पूर्ण कर अंदर के स्थान रिक्त रखने चाहिए। घोष-प्रमुख घोष की चौड़ाई के अनुसार पर्याप्त अंतर लेकर, घोष की प्रथम तति से सम-द्विभुज त्रिकोण की स्थिति में खड़ा होगा ।

घोष साधनम्

'अग्रेसर' :- घोष-प्रमुख द्वारा यह आज्ञा दिए जाने पर, निश्चित किया हुआ अग्रेसर आनक-वादक 'दक्ष' करके संचलन करते हुए घोष-प्रमुख के संमुख तीन कदम पर खड़ा होगा।

'अग्रेसर आरम्' :- अग्रंसर आरम् करेगा।

'घोष संपत्' :- इस आज्ञा पर, सब वादक 'दक्ष' कर, प्रचलन करते हुए, यथानिर्देश (चित्रानुसार) संपत् करेंगे। दो स्वयंसेवकों के बीच दो कदम का अंतर रहेगा। आनक, वंशी, शंख के दल-प्रमुख अपने-अपने दलों के वादकों के स्थान निश्चित करने में घोषप्रमुख की सहायता करेंगे। अग्रेसर आरम् करने के उपरान्त, हरेक वादक, सामने और दाहिनी ओर के वादक आरम् करने के पश्चात क्रमशः आरम् करेंगे।

संपत् पूर्ण होने पर, घोष-प्रमुख 'दक्ष' और 'सम्यक्' आज्ञा देकर, स्वयं अंतर और सम्यक् का निरीक्षण करेगा; तथा 'संख्या' व 'आरम्' आज्ञाओं के पश्चात संख्या लेकर, आनक-वादकों के प्रथम तति के मध्य से, चौड़ाई के अनुसार, कम से कम पांच कदम आगे, समद्विभुज त्रिकोण में अपना स्थान ग्रहण करेगा। यदि घोष की चौड़ाई अधिक हो, तो घोषपुमुख पर्याप्त अंतर पर खड़ा रहेगा।

'संख्या' :- इस आज्ञा पर, वितति का अंतिम स्वयंसेवक, वितति के पहले स्वयंसेवक को संख्या बताएगा। यदि पणव-वादक की संख्या किसी वितति में जोड़ी नहीं गयी है, तो उसकी तथा घोषप्रमुख की संख्या, स्वयं घोषप्रमुख द्वारा जोड़ी जाएगी।

पश्चात् घोषप्रमुख सभी वाद्यों तथा उन के स्वरों का स्वर-मेलन कराते हुए,आनक, वंशी, शंख इन वाद्यों का एक बार सांघिक वादन लेकर, घोष को तैयार रखेगा । उपरोक्त संपूर्ण प्रक्रिया को 'घोष-साधनम् कहते हैं ।

घोष-समता

प्रचल :-घोष संपत् के वर्णनानुसार सब स्वयंसेवक प्रचल करेंगे। चलते समय केंद्र से तथा सामने से सम्यक् देखना तथा अपने वाद्य की स्थिति पर ध्यान रखना चाहिए। प्रथम तति के स्वयंसेवक इस प्रकार चलेंगे, ताकि घोषप्रमुख और उन के बीच का अंतर तथा स्थिति बनी रहें।

दक्षिण (वाम) दिगंतर दक्षिण (वाम) भ्रम :- इस आज्ञा अथवा संकेत के बाद प्रथम (अंतिम) वितति के स्वयंसेवक तीन मीटर की त्रिज्या से बनने वाले वृत्त की परिधि पर दस कदमों में यह मंडलच्छेद (1/4 मंडल), 50 से.मी. के कदम डालते हुए भ्रमण करेंगे और शेष विततियों के स्वयंसेवक उनसे क्रमशः दीर्घतर कदम डालते हुए, तति का सम्यक् देखते हुए भ्रमण करेंगे। स्वयं घोषप्रमुख मध्य के स्वयंसेवक के समान, उसी के त्रिज्या पर, अंतर कायम रखते हुए भ्रमण करेगा।

प्रतिभ्रम :- 'अर्धवृत' आज्ञा देने से घोष का व्यूह बदल जाता है। घोषप्रमुख घोष के आगे रहे तथा घोषव्यूह में भी कुछ बदल न हो, इस लिए 'प्रतिभ्रम' का प्रयोग करते हैं। तथापि आवश्यकता पड़ने पर 'अर्धवृत्' के बाद 'प्रचल' आज्ञा दे सकते हैं।

प्रतिभ्रम की आज्ञा होते ही, विततियों की संख्या सम होने पर, घोषप्रमुख के बायीं ओर के स्वयंसेवक बायीं ओर से तथा दाहिनी ओर के स्वयंसेवक दाहिनी ओर से; और विततियों की संख्या विषम होने पर, सभी स्वयंसेवक दाहिनी ओर से, घोषप्रमुख व प्रथम तति में जितना अंतर है, उतना ही अंतर घोषप्रमुख से आगे जाकर, चार हस्व पदों में पीछे घूमकर, अपनी वितति के पाास से विरुद्ध दिशा में चलेंगे। वितति का प्रत्येक स्वयंसेवक उसी स्थान पर पहुंचकर प्रतिभ्रम करेगा, जहां से उस वितति के प्रथम स्वयंसेवक ने प्रतिभ्रम किया है। पणव-वादक भ्रमण-रेखा के कुछ आगे जाकर दाहिनी ओर से भ्रमण करेगा। वितति में न होने पर, पणव-वादक घोषप्रमुख (कि पीछे) से सम्यक् लेगा। प्रतिभ्रम करने के लिए चलते समय पणववादक घोषप्रमुख को अपने दाहिने बाजू में रखकर आगे बढ़ेगा।

घोषप्रमुख जब घोष के आगे चल रहा हो, जब उसका स्तभ् होकर रुकना ही प्रतिभ्रम का संकेत माना जाएगा। यह संकेत होने पर, प्रथम तति के स्वयंसेवक चौड़ाई के अनुसार, घोषप्रमुख से जितना अंतर है, उतना ही अंतर उस से आगे जाकर उपरोक्त पद्धति से भ्रमण करेंगे। प्रात्यक्षिक के समय छोटे मोटे बदलाव से प्रतिभ्रम के अनेक प्रकार हो सकते हैं।

घोषप्रमुख घोष के सामने न हो ऐसी स्थिति में, प्रतिभ्रम अपेक्षित हो, तो आनक-दल प्रमुख की आज्ञा पर घोष प्रतिभ्रम करेगा।

मंदचल :- यह आज्ञा देते समय 'मंद' तथा 'चल' के बीच में अधिक समय तक रुकना चाहिए। आवर्तनात्मक गति के अनुसार संकेत अपेक्षित है। चलते समय कमर के ऊपर शरीर सीधा और हाथ 'दक्ष' की स्थिति जैसे रहेंगे।

स्थिर स्थिति से मंदचल :- विभागशः हो तो अंकों के अनुसार, अन्यथा ताल के अनुसार करना।

बायां पैर 75 से.मी. आगे बढ़ाकर रखते ही तुरंत दाहिना पैर 37.5 से.मी. आगे लेना। दाहिना पंजा जमीन से साधारणतः समानांतर और 'दक्ष' स्थिति जैसा कुछ बाहर की ओर मुड़ा रहेगा। शरीर का भार बाएं पैर पर रहेगा। इसी स्थिति में क्षण भर रुककर दाहिने पैर के साथ सारा शरीर 37.5 से.मी. आगे बढ़ाकर, दाहिना पैर जमीन पर रखना। एड़ी पहले टिकानी चाहिए। दाहिना पैर रखते ही बायां पैर उठाकर, झटके से दाहिने पैर से 37.5 से.मी. आगे बढ़ाना। शरीर का भार उस समय दाहिने पैर पर ही रहेगा। इसी प्रकार मंदचल की गति में आगे बढ़ते जाना।

मंदचल से स्तभ् :- बाएं पैर पर आज्ञा पूर्ण होगी। पश्चात् दाहिना पैर मंदचल की गति से आगे लेकर, बाएं पैर से मिलाना।

मंदचल से प्रचल :- आज्ञा दाहिने पैर पर समाप्त होगी। पश्चात् बायां पैर मंदचल गति से रखते ही प्रचलन प्रारंभ करना।

प्रचल से मंदचल :- आज्ञा बाएं पैर पर समाप्त होगी। पश्चात दाहिना व बायां पैर प्रचल की गति से रखकर, दाहिना पैर मंदचल की गति से

डालना। बायां पैर रखते ही हाथों की हलचल बंद होगी।

सूचना :- विकिर या विश्रम आज्ञा के पश्चात् बाकी स्वयंसेवकों के साथ घोष के स्वयंसेवक भी विकिर या विश्रम करेंगे। आवश्यकता होने पर घोषप्रमुख बाद में वादकों को 'वामवृत्' दे सकता है।

वादन प्रारंभ

'घोष सिद्ध' आज्ञा होते ही समस्त ताल (अवनद्ध एवं घन) वाद्यों के वादक 'सिद्ध' स्थिति में आएंगे। पश्चात् घोषप्रमुख जिस वाद्य का वादन अपेक्षित है, उस दल का नाम पुकारेगा;- 'आनक-दल' 'शंख-दल' या 'वंशी-दल'। तत्पश्चात् अपेक्षित लय के अनुसार घोषप्रमुख 'एक दो, एक दो' अथवा 'एक दो तीन, एक दो तीन' के अंक आज्ञा के रूप में देगा। प्रति दो मध्य में कम से कम दो सेकंड का अंतर छोड़ना चाहिए। केरवा और खेमटा के लिए 'एक दो, एक दो' तथा दादरा के लिए 'एक दो तीन, एक दो तीन' अंक अंकताल के रूप में देना चाहिए। यदि 'प्रचल' या 'मंदचल' आज्ञा दी जाती है, तो इस प्रकार अंक कहने की आवश्यकता नहीं होगी।

[उदा; कोई खास रचना का वादन अपेक्षित हो, तो घोषप्रमुख -'घोष सिद्ध'-(दो सेकंड यति) 'शंखदल, रचना चेतक' ऐसी सूचना देकर, 'एक दो, एक दो' अंकताल देगा; पश्चात् वादन प्रारंभ होगा]

उसी अंक के लय में आनक का रणन प्रारंभ होगा। जिस वाद्य-वादन की सूचना होगी, उस वाद्य के वादक रणन के साथ ही 'सिद्ध' स्थिति लेंगे। उस वाद्य का दल प्रमुख, दो रणनों के मध्य की यति में, रचना का नाम पुकारेगा। रणन समाप्त होने पर उस रचना के वादन का प्रारंभ होगा।

सामान्यत: शंख में अग्रवादन के बाद अनुवादन होता है। संख्या पर्याप्त होने पर आनक में भी इसी प्रकार अग्रवादन-अनुवादन कर सकते हैं तथा वंशी वादन सब मिलकर एक साथ ही करते हैं।

अग्रवादन करने वाले वादकों को अग्रवादक एवं अनुवादक करने वाले वादकों को अनुवादक कहते हैं।

* * *

3. घोषदंड एवं संकेत

घोषदंड द्वारा घोष का संचालन किया जाता है। घोष-वादन न हो, तब आज्ञाएं मौखिक ही होंगी, तथा वादन में घोषदंड द्वारा ही आज्ञाएं दी जाएंगी। घोषदंड के आकर्षक घुमाने से घोष की शोभा बढ़कर वह अधिक प्रेक्षणीय बनता है। घोषदंड का उपयोग दो प्रकार से किया जाता है। 1. संकेत व 2. शोभाचलन।

घोषदंड

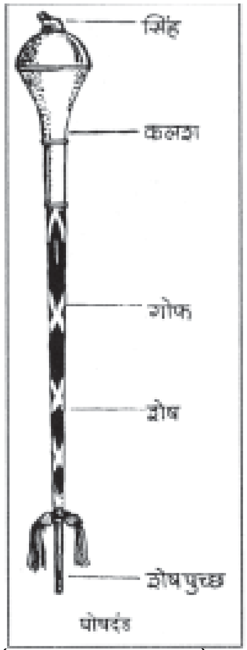

घोषदंड

घोषदंड के तीन प्रमुख अंग होते हैं। 1. कलश, 2. शेष तथा 3. शेषपुच्छ। कलश और शेष प्रमुख धातु के बने होते हैं; और इन दोनों के मध्य भाग को शेष कहते हैं। 'शेष' लकड़ी, फायबर या बेंत का बनाया जाता है। कलश गोलाकार तथा पोला होता है। उस के विविध प्रकार भी हो सकते हैं। कलश के ऊपर 'स्वयमेव मृगेंद्रता' सिंह की प्रतिमा बिठाई जाए तो अधिक अर्थपूर्ण और शोभादायक होगा। घोषदंड दर्शनीय हो इस लिए, शेष पर विविध प्रकार के अलंकार किए जाते हैं। शेष की जंजीर (चेन) से सजावट करने से, हाथ को चाटे आने की संभावना रहती है।

घोषदंड की ऊंचाई सामान्यत: घोष प्रमुख के कंधे तक होती है। उस का संतुलन बिंदु (Balancingpoint) कलश के नीचे वाले हिस्से से करीब 20 से.मी. की व्याप्ति (Range) में हो तो, शोभाचलन के लिए सुविधाजनक होता है। संकेत तथा शोभाचलन करने के लिए घोषदंड का वजन संतुलित रखना चाहिए।

घोषदंड समता

१) **दक्ष:**- घोषदंड दाहिने हाथ में, दाहिना प्रकोष्ठ जमीन से समानांतर, दाहिनी कोहनी में समकोण, दाहिने पैर की उंगलियों की दिशा में दाहिना हाथ, भुजा शरीर से सटी हुई, शेषपुच्छ दाहिनी पादांगुलि के पास जमीन पर। बायां हाथ शरीर से सटा हुआ।

2) **आरम् :**- बायां पैर बायीं ओर, बायां हाथ 'दक्ष' की स्थिति में। दाहिना हाथ कंधे से कलाई तक सीधा करते हुए, घोषदंड दाहिने कर्णकोन में, दाहिने पैर की उंगलियां की दिशा में।

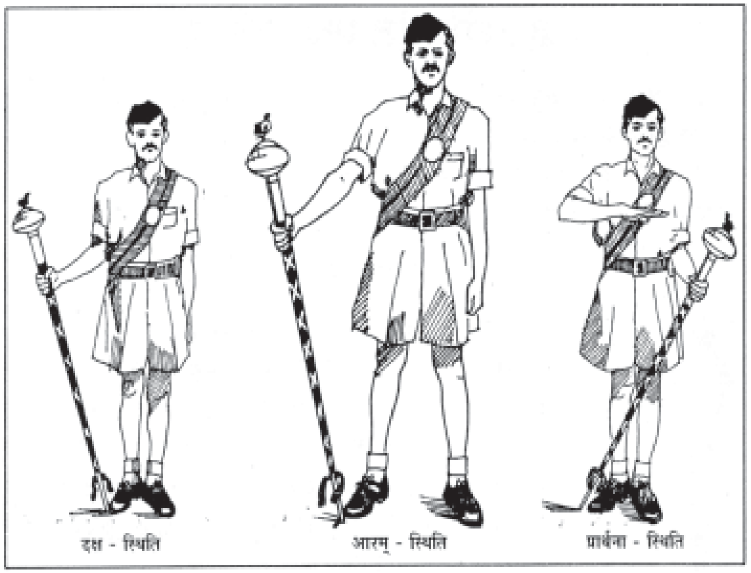
दक्ष - स्थिति
आरम् - स्थिति
प्रार्थना - स्थिति

3) **स्वस्थ :**- घोषदंड की पकड़ कुछ ढीली कर, आवश्यकतानुसार हाथ नीचे-ऊपर कर सकते हैं।

4) **प्रचल :**- प्रचल करते समय घोषदंड का कोई भी शोभाचलन किसी भी हाथ से किया जा सकता है। घोषदंड-रहित हाथ संचलन के नियमानुसार हिलाना चाहिए।

5) **स्तभ् :**- दाहिना पैर बाएं से मिलाना; घोषदंड 'दक्ष' की स्थिति में।

6) **प्रार्थना के समय :**- शेषपुच्छ वहीं रखते हुए घोषदंड दाहिने हाथ से बाएं हाथ में; बाएं हाथ की स्थिति, 'दक्ष' में घोषदंडयुक्त दाहिने हाथ की स्थिति जैसी होगी। दाहिना हाथ प्रार्थना की स्थिति में।

सूचना:

१. उपरोक्त सभी क्रियाएं घोषदंड बाएं हाथ में पकड़कर भी की जा सकती हैं। तथापि आरम् के समय यदि घोषदंड बाएं हाथ में हो, तो बाएं पैर के साथ शेषपुच्छ भी उठा कर बायीं ओर रखना अवाश्यक होगा।

2. 'ध्वजप्रणाम' आज्ञा के बाद जब वादन अपेक्षित है, तब केवल घोष प्रमुख घोष प्रतिनिधि के रूप में ध्वज प्रणाम करेगा; तथा वादन अपेक्षित न हो, तब घोष के सभी स्वयंसेवक ध्वज प्रणाम करेंगे। ऐसे संदर्भ में 'ध्वज प्रणाम' आज्ञा के पश्चात्, पहले अंक पर दाहिना हाथ, सब वाद्यों तथा घोषदंड की स्थिति 'प्रार्थना के समय' के दाहिने हाथ, वाद्यो तथा घोषदंड की स्थिति जैसी रहेगी; दूसरे अंक पर नतमस्तक और तीसरे अंक पर 'दक्ष' स्थिति के अनुसार हाथों, वाद्यों तथा घोषदंड की स्थिति रहेगी।

३. केवल 'ध्वजारोपणम्' तथा 'प्रत्युत प्रचलनम्' के पश्चात् ही 'ध्वजप्रणाम' का वादन अपेक्षित है। अन्य समय में सब के साथ वादक भी ध्वज प्रणाम करेंगे।

घोषदण्ड संकेत

घोषदंड द्वारा दिए गए आज्ञाओं को 'संकेत' कहते हैं। घोषदंड द्वारा दिए जानेवाला संकेत के सामान्यत: तीन भाग होते हैं। 1. पूर्व सूचना, 2. सूचना, 3. पालनार्थ संकेत। संकेत का यह तीसरा भाग विशेष महत्व का होता है। इनकी हरेक कृति में स्पष्टता और लयबद्धता होनी चाहिए। प्रत्येक संकेत ठीक ढंग से वादकों को दिखायी दें इसकी सतर्कता

घोषप्रमुख को बरतनी चाहिए। 'पालनार्थ' संकेत के पूर्व, संचलन गति के कम से कम चार अंक तक घोषदंड को उसी स्थिति में रखना चाहिए। वादन में निमग्न वादकों का ध्यान संकेत की ओर आकर्षित करने के लिए पणव पर ध्वंकारद्वय बजाना उपादेय होगा। संकेत करते समय घोष प्रमुख का वादकों के सम्मुख रहना आवश्यक है, जिससे सब को संकेत दृगोचर हो सकें।

घोषदंड के संकेत बाएं हाथ से करने से उनके अर्थ में कोई अंतर नहीं पड़ता। रात्रि के समय, घोषदंड के स्थान पर प्रकाशिका अथवा अन्य माध्यम का प्रयोग किया जा सकता है।

घोषदंड के संकेत निम्नानुसार होते हैं ।

1. वादनान्त
2. वाद्यनिर्देश
3. वाद्यनिर्देश सहित वादनान्त,
4. चल(प्रचल या मंदचल)
5. स्तभ्
6. वादनान्त सहित स्तभ्
7. भ्रम(दक्षिण,वाम,प्रति)और
8. गत्यन्तर।

इनमें वाद्यनिर्देश तथा गत्यंतर के संकेत 'पूर्वसूचनात्मक' हैं। वादनांत,चल व स्तभ् संकेतों से 'सूचना' तथा 'पालनार्थ' निर्देश मिलता है। भ्रम के संकेत से भ्रमण की 'सूचना' मिलती है, जिस का पालन घोष प्रमुख से प्रारंभ होकर, बाद में ततिशः होता है।

1) **वादनान्त** :- '1' शेषपुच्छ दाहिने हाथ में, तर्जनी घोषदंड पर कलश की ओर, हाथ कर्णरेखा में सीधा ऊपर, कलश आकाश की ओर, घोषदंड जमीन से लंबरूप। यह स्थिति वादनान्त की 'सूचना' होगी। '2' दाहिना हाथ नीचे लाना, प्रकोष्ठ जमीन से समानांतर, भुजा शरीर से सटी हुई, घोषदंड जमीन से लंबरूप, प्रकोष्ठ तथा भुजा में 90 अंश का कोण।

यह क्रिया सामान्यतः चरण के अंतिम गणारंभ के प्रारंभ में पूर्ण होगी।

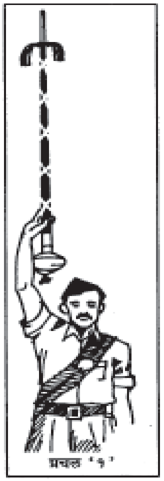

प्रचल '१'

विशेष आवश्यकता होने पर, किसी भी गणारंभ के प्रारंभ में संकेत पूर्ण किया जा सकता है। 'चल' स्थिति में यह संकेत मिलने पर, वादन मात्र रुकेगा; प्रचल (मंदचल) उसी गति में जारी रहेगा।

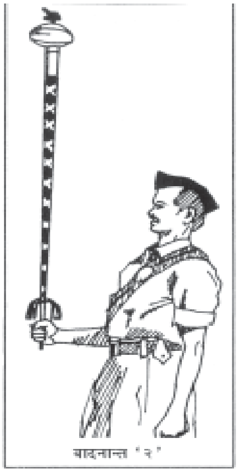

वादनान्त '२'

2) **वाद्यनिर्देश** :- इसके चार प्रकार होते हैं।

आनक :- दाहिने हाथ की पकड़ 'दक्ष' स्थिति जैसी रखकर घोषदंड दोनों हाथों में जमीन से समानांतर; हाथ सीधे नीचे, दाहिनी मुष्टि की उंगलियां तथा बायां मुष्टिपृष्ठ सामने की ओर।

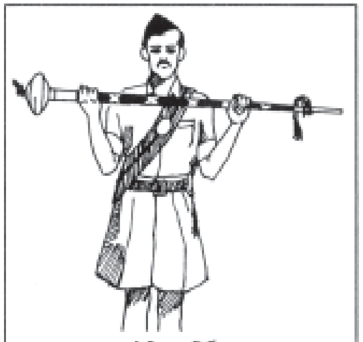

वंशी वाद्यनिर्देश

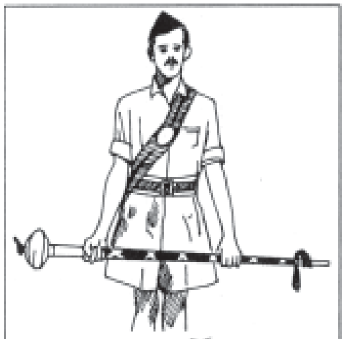

आनक वाद्यनिर्देश

वंशी :- घोषदंड कंधो के सामने जमीन से समानांतर, दोनों हाथों में पकड़ने की स्थिति आनक-वाद्य निर्देश जैसी; हाथ कोहनी में पूर्णतः मुड़े हुए।

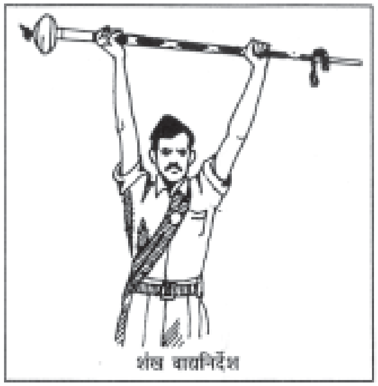
शंख वाद्यनिर्देश

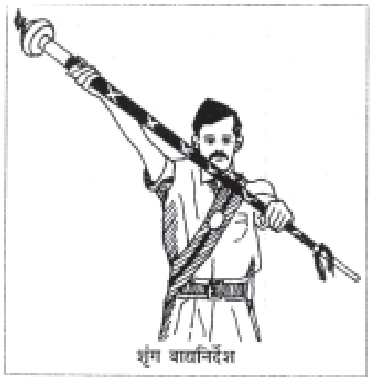
शृंग वाद्यनिर्देश

शंख :- घोषदंड दोनों हाथों में पकड़ने की स्थिति आनक-वाद्यनिर्देश जैसी, हाथ कर्णरिखा में सीधे ऊपर, घोषदंड जमीन से समानांतर।

शृंग :- घोषदंड पर हाथों की पकड़ आनक-वाद्य निर्देश जैसी। बायां हाथ कंधे की सीध में सामने जमीन से समानांतर। घोषदंड जमीन से साधारणत: 45 अंश का कोण करता हुआ, दाहिना हाथ सीधा सामने से ऊपर तिरछा ।

3) **वाद्यनिर्देश सहित वादनान्त :-** 'वाद्यनिर्देश' पूर्व सूचनात्मक होने से संकेत पूर्ण नहीं होता। बल्कि उसके साथ 'वादनान्त' जोड़ने पर ही संकेत पूर्ण होता है। उसके बाद, रणन आरंभ कर निर्देशित वाद्य पर पूर्वघोषित रचना बजायी जाती है। यह प्रक्रिया विशेषत: अनुवाद के समय सोलह अंको में कर सकते हैं। पहले आठ अंक 'वाद्यनिर्देश' का संकेत दिखाने के लिए, यह संकेत की 'पूर्वसूचना' है; 'वादनान्त' संकेत में हाथ बदलने के लिए नौवां और दसवां अंक; ग्यारह से चौदहवे अंक 'वादनान्त' संकेत दिखाने के लिए, यह संकेत की 'सूचना' है; पंद्रहवे अंक पर संकेत पूर्ण होना चाहिए। सोलहवे अंक का अंतर छोड़कर, बाद में शोभाचलन कर सकते हैं।

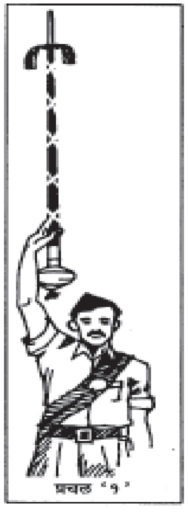
प्रचल '१'

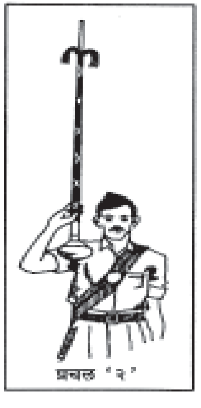
प्रचल '२'

यह प्रक्रिया रचना के किसी भी चरण में कर सकते हैं।

4) **चल :-** यह संकेत दो प्रकार का होता है। 1. प्रचल और 2. मंदचल।

प्रचल :- '**1**' शेषपुच्छ आकाश की ओर करते हुए दाहिना हाथ कर्णरिखा में सीधा ऊपर, कलश कंधे के ऊपर किन्तु दूर, घोषदंड जमीन से लंबरूप जमीन से लंबरूप। यह 'चल' की पूर्वसूचना होगी। '**2**' दाहिना हाथ कोहनी में मोड़कर कलश कंधे के निकट सामने की ओर, घोषदंड जमीन से लंबरूप। यह 'पालनार्थ' संकेत है।

यदि संकेत दाहिने पैर पर पूर्ण होता है, तो अगले बाएं पैर से अथवा संकेत बाएं पैर पर पूर्ण होता है, तब दाहिने पैर का अंतर छोड़कर, अगले बाएं पैर से चलना प्रारंभ करेंगे।

मंदचल :- '**1**' दाहिने हाथ में घोषदंड पकड़ने की स्थिति प्रचल '**1**' की स्थिति के समान, घोषदंड सहित सीधा दाहिना हाथ दाहिनी ओर तिरछा, करीब 135 अंश के कोण में। यह 'सूचना' है ।'2' घोषदंड की स्थिति वही रखते हुए दाहिना हाथ कोहिनी में मोड़कर, कलश सीने के सामने। यह 'पालनार्थ' संकेत होगा।

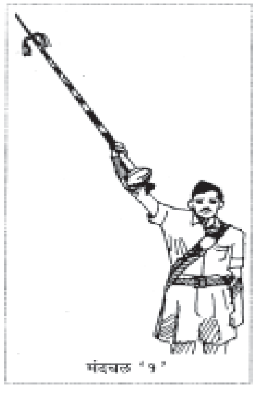
मंदचल '१'

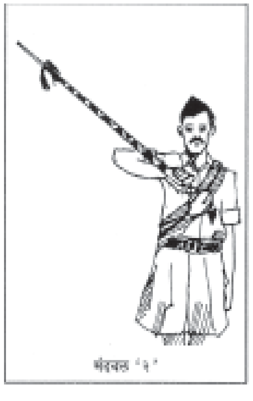
मंदचल '२'

मंदचल से प्रचल:– 'प्रचल' संकेत दाहिने पैर पर समाप्त होगा। पश्चात् बायां पैर मंदचल की गति से रखते ही प्रचलन प्रारंभ होगा।

प्रचल से मंदचल :– 'मंदचल' संकेत बाएं पैर पर समाप्त होगा। पश्चात् दाहिना व बायां पैर प्रचल की गति से रखकर, अगला दाहिना पैर मंदचल की गति से रखना। बायां पैर रखते ही हाथों की हलचल बंद होगी।

5) **स्तभ्** :– **'1'** शेषपुच्छ पकड़कर हाथ सीधा बाजू में तिरछा, शरीर से साधारणत: 110 अंश का कोण बनाता हुआ, कलश सिर पर आवे इस प्रकार घोषदंड तिरछा। यह 'स्तभ्' की 'सूचना' है। **'2'** कलश उसी बिंदु पर स्थिर रखते हुए, दाहिना पैर आगे लाते समय, दाहिना हाथ और शेषपुच्छ सीने के सामने लाना। भुजा और प्रकोष्ठ प्रणाम जैसी स्थिति में। इस से 'पालनार्थ' संकेत मिलता है। पश्चात् उसी ताल में बायां पैर आगे रखकर, उससे दाहिना पैर मिलाना। मंदचल के स्तभ् में भी इसी प्रकार की कृति करना। वादन के साथ प्रचल (मंदचल) के समय यह संकेत मिलने पर, प्रचल (मंदचल) का 'स्तभ्' होगा और वादन उसी गति में जारी रहेगा।

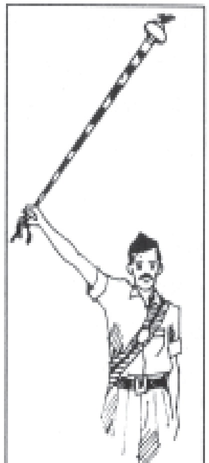
स्तभ् '१'

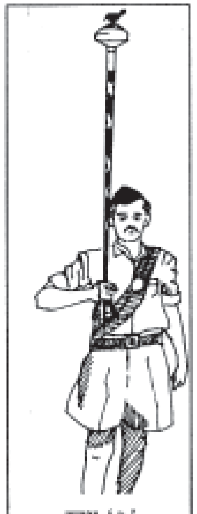
स्तभ् '२'

6) **वादनान्त सहित स्तभ्** :– **'1'**. वादनान्त विभागश: **'1'** की क्रिया **'2'**. स्तभ् 'सूचना' की क्रिया। (यदि वादनान्त संकेत से ही हाथ नीचे लाया गया तो वादकों में संभ्रम उत्पन्न हो सकता है। इसलिए उसी स्थिति से हाथ सीधा 'स्तभ्' संकेत की ओर लेना चाहिए) **'3'**. स्तभ् 'पालनार्थ' याने स्तभ् विभागश: **'2'** का संकेत देना। इससे वादनान्त तथा प्रचल अथवा मंदचल स्तभ् एक साथ होगा।

7) **भ्रम** :– इसमें दक्षिण, वाम और प्रति ये तीन प्रकार के भ्रमण समाविष्ट हैं।

दक्षिण भ्रम :– घोषदंड सीने के समीप जमीन से समानांतर, दाहिना हाथ प्रणाम के स्थिति जैसा घोषदंड पकड़ा हुआ, कलश दाहिने कंधे के सामने, बायां हाथ बायी ओर सीधा तना हुआ, चारों उंगलियां सीधी मिलायी हुयी, बायीं हथेली सामने की ओर, शेष बाएं हाथ के अंगूठे तथा तर्जनी के मध्य रखा हुआ, शेषपुच्छ बायीं ओर। इससे दक्षिण-भ्रम की 'सूचना' मिलती है।

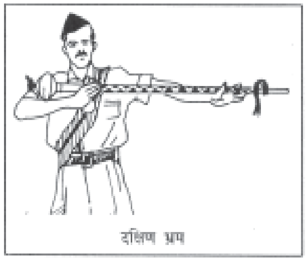
दक्षिण भ्रम

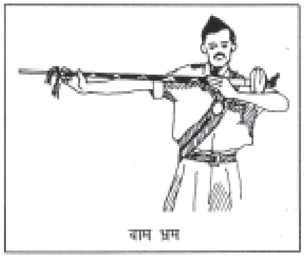
वाम भ्रम

वामभ्रम :– हाथ और घोषदंड की दिशा बदलकर उपरोक्त 'दक्षिण' भ्रम संकेत जैसी क्रिया करना। इससे वाम भ्रम की 'सूचना' मिलती है।

घोषप्रमुख के भ्रमण के साथ ही भ्रमण की क्रिया प्रारंभ होगी। प्रथम दो ततियों का भ्रमण पूर्ण होने पर घोषदंड पूर्व स्थिति में लाना। पथ संचलन का एक अंग बनकर घोष पथक संचलन करते समय अथवा 'वाम' भ्रमण का संकेत अलग से देने की आवश्यकता नहीं है।

प्रति भ्रम :– **1**. (चल स्थिति में) संचलन करते समय घोष प्रमुख स्तभ् कर 'दक्ष' स्थिति में खड़ा रहेगा। यही 'प्रति भ्रम' का संकेत होगा। **2**. (स्थिर स्थिति में) प्रचल संकेत देने के बाद कम से कम एक पद पुरस्सर करते हुए घोष प्रमुख 'दक्ष' स्थिति में खड़ा होगा अथवा घोष प्रमुख अर्धवृत् कर, प्रचल या मंदचल का संकेत देगा। यही 'प्रतिभ्रम' का संकेत होगा।

8) **गत्यंयर** :– वादन की गति बदलने के लिए यह संकेत है। शेषपुच्छ का थोड़ा ऊपर का हिस्सा दाहिने हाथ में, तर्जनी घोषदंड की दिशा में,

घोषदंड दाहिने बाजू में, दाहिना हाथ और घोषदंड एक ही सीध में शरीर से साधारणत: 135 अंश का कोण बनाते हुए, शेषपुच्छ प्रकोष्ठ पर। यह गत्यंतर की 'पूर्वसूचना' है। घोषदंड की दिशा तथा कोण वही रखते हुए दाहिना हाथ सीने के पास लाना, कोहनी में प्रणाम की स्थिति जैसा मुड़ा हुआ। यह गत्यंतर 'पालनार्थ' संकेत है।

चल स्थिति में यह संकेत मिलने पर वादन के साथ चलने की गति भी बदलेगी ।

सूचना :-

1. मौखिक आज्ञाओं का प्रयोग वादन प्रारंभ करने तक ही करें। तत्पश्चात् घोषदंड के माध्यम से ही संकेत देना चाहिए।

2. 'पूर्व सूचना' या 'सूचना' के उपरांत, एक चरण तक यदि कोई 'पालनार्थ' संकेत नहीं दिया गया है, तो उस 'पूर्व सूचना' या 'सूचना' को निरस्त माना जाए।

3. प्रचल, मंदचल, स्तभ्, वादनांत सहित स्तभ्, भ्रमण, तथा गत्यंतर के संकेत, वादन के किसी भी बिंदु पर दिए जा सकते हैं।

शोभाचलन

एक संकेत पूर्ण होकर दूसरे संकेत तक, बीच में घोष की शोभा बढ़ाने के हेतु घोषदंड घुमाया जाता है। उसे 'शोभाचलन' कहते हैं। शोभाचलन निम्न प्रकार का होता है।

घोषदंड :-

1. शरीर के बाजू में वृत्ताकार घुमाना ।
2. शरीर के सामने वृत्ताकार घुमाना ।
3. ऊपर उड़ाना ।
4. प्रणाम जैसी स्थिति में शरीर के सामने घुमाना।
5. अन्य प्रकार।

घोषदंड के उपरोक्त शोभाचलन में हमारी प्रतिभा तथा कौशल के अनुसार अन्यान्य उप-प्रकार का शोभाचलन भी कर सकते हैं। उसी तरह से शोभाचलन में प्रदर्शनीय विन्यास अनेक विध से किए जा सकते हैं। लेकिन उन सबका प्रयोग करना ही चाहिए ऐसा कोई बंधन नहीं है।

सूचना :-

1. शोभाचलन का अभ्यास पहले दंड के साथ करना तथा आत्मविश्वास व पकड़ आने पर घोषदंड के साथ शोभाचलन करना उचित होगा।

2. शोभाचलन के सभी प्रकार अनिवार्यत: प्रयोग में लाना ही चाहिए ऐसा नहीं है। जिनका प्रयोग सही अर्थ में शोभावृद्धि करेगा ऐसा आप को लगता है, उन्हीं प्रकारों का शोभाचलन करना ठीक रहेगा।

3. विशेष कार्यक्रमों के संदर्भ में शोभाचलन का प्रयोग उत्कृष्ट होगा इसका ध्यान रखा जाए।

4. किसी भी प्रकार का शोभाचलन करते समय, घोष प्रमुख अपने स्थान तथा घोषदंड की गरिमा एवं मर्यादा का विशेष ध्यान रखेगा।

संकेत के विन्यास में स्थिति झटके से और आवर्तनात्मक गति में स्थिर होती है। वे लयबद्ध होते हैं तथा सुनिश्चित अर्थ स्पष्ट करते हैं। शोभाचलन गति में स्थिति गतिमान होने से उस में से किसी सुनिश्चित अर्थ, संकेत या आदेश की अपेक्षा नहीं है। यह बात संकेत तथा शोभाचलन के बीच की अलगता प्रकट करती है।

संकेत और शोभाचलन के विन्यासों में साधर्म्य या सादृश्यता होने पर संकेतों के संबंध में संभ्रम निर्माण हो सकता है। ऐसी अवस्था में संकेतों को सही महत्त्व देना आवश्यक है। घोषदंड के किसी विन्यास से संभ्रम उत्पन्न न हो इसकी सावधानी घोषप्रमुख को रखनी चाहिए ।

4. घोष प्रमुख का दायित्व

घोष के सुयोग्य गठन, प्रशिक्षण तथा संचालन में घोष प्रमुख का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। इस लिए अन्य स्थानों पर बतायी गयीं बातों के अतिरिक्त, निम्नलिखित मुद्दों की ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

स्वयंसिद्धता

1. स्वर तथा ताल का ज्ञान प्राप्त करना।

2. कम से कम एक वाद्य में वादन-प्राविण्य प्राप्त करना, तथा शेष सभी वाद्यों एवं उनकी रचनाओं की जानकारी रखना।

3. समता करने तथा आज्ञा देने में प्रभुत्व प्राप्त करना।

4. गणवेश तथा अनुशासन में स्वतः का आदर्श प्रस्तुत करना।

5. किसी भी संदर्भ में उचित निर्णय लेने की क्षमता रखना।

6. घोषदंड द्वारा संकेत तथा शोभाचलन का स्वयं ठीक अभ्यास करना।

7. घोष की शिक्षण-विधियों तथा लिपि का अच्छा ज्ञान रखना।

8. स्वयंसेवकों का ध्यानाकर्षण करने की दृष्टि से अपने पास सीटी रखना।

संघटनात्मक

1. सब स्वयंसेवकों को साथ में ले जाने का संगठन-कौशल रखना।

2. सभी घोष-वादकों के साथ अच्छा संपर्क रखना।

3. घोष भी शारीरिक विभाग का ही एक अंग है यह ध्यान में रखते हुए, घोष का अभ्यास-वर्ग तथा अन्य कार्यक्रम तय करते समय, अधिकारी व शारीरिक शिक्षण-प्रमुख के साथ विचार विनिमय करते हुए निर्णय लेना।

4. सब स्वयंसेवकों के साथ मधुर संभाषण तथा योग्य व्यवहार करना।

5. घोष में नए स्वयंसेवकों को जोड़ने की प्रक्रिया सदैव जारी रखना।

वाद्य तथा वादन

1. वाद्यों के अनुरक्षण (मरम्मत) की योग्य व्यवस्था करना। इसीके साथ समारंभ अथवा अन्य कार्यक्रम के लिए बाहर गांव जाते समय तथा आने के बाद भी वाद्यों की सही देखभाल करना।

2. सभी वाद्यों को वादन-योग्य रखना तथा वाद्यों की संख्या में आवश्यकतानुसार वृद्धि करना।

3. आनक और पणव खोलकर फिर से जोड़ने तथा कसने की विधि का अच्छा ज्ञान रखना।

4. घोष सिखाने की दृष्टि से सप्ताह में एक बार शाखा के रूप में घोष-वर्ग लेना। इस वर्ग में सब स्वयंसेवक शाखा वेश में ही आएं ऐसा आग्रह रखना।

कार्यक्रमात्मक

1. कार्यक्रम के 10-15 दिन पहले से सब वाद्यों को वादनयोग्य बना कर ठीक तरह से रखना, तथा कार्यक्रम की पूर्वसिद्धता करना।

2. कुल कार्यक्रम में घोष का स्थान, बजाने योग्य रचनाएं, व्यूह-रचना, आदि के बारे में सब संबंधित अधिकारियों के साथ मिलकर योजना तैयार करना।

३. कार्यक्रम से आधा घंटा पहले घोष का संपत् कर, प्रत्येक वादक के गणवेश और वाद्य का निरीक्षण; तथा एक बार सांघिक वादन कराते हुए घोष को तैयार रखना।

4. वादक अपना गणवेश अच्छा बनाते और पहनते हैं इसके बारे में सतर्क रहना।

5. वादक अपना वाद्य उत्तम अवस्था में रखें इसका आग्रह करना।

6. पथ-संचलन का मार्ग पहले ही देखकर, कौन सा वाद्य कहां बजाना इसका अंदाजा लेना उचित रहेगा।

7. कार्यक्रम मे पूर्व 15 दिन, नित्य घोष-वर्ग लेना योग्य होगा ।

5. वाद्यों की व्यवस्था एवं शोभा

घोष की सुश्राव्यता के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि सब वादकों को अपने वाद्य के वादन का उत्तम अभ्यास हो। घोष को अधिक प्रभावकारी बनाने के लिए उसकी दर्शनीयता पर भी ध्यान देना चाहिए। इस लिए जहां सभी वादकों का गणवेश उत्तम हो, वहां वाद्यों का साफ-सुथरा एवं चमकदार होना भी वांछनीय है। इस दृष्टि से कुछ बातों पर ध्यान देना उचित होगा।

घोषदंड :- घोषदंड का कलश, शेष तथा शेषपुच्छ पॉलिश किया हुआ तथा चमकीला होना चाहिए। शेष पर ठीक प्रकार से अलंकार करने चाहिए। उपयोग के बाद घोषदंड उस की थैली में ठीक तरह से किसी आधार पर अथवा अन्य व्यवस्था में रखना चाहिए, जिससे वह नीचे गिरकर क्षतिग्रस्त न हो, या अपने ही वजन से अथवा अन्य किसी कारण उस पर कोई दबाव आकर वह टेढ़ा न बन जाए।

पणव तथा आनक :- इनके दंडगोलाकार कोष तथा वलयों का रंग और चमक अच्छी हो इसका ध्यान रखना चाहिए। पणव तथा आनक के चर्मबंध पक्के सिले हुए हों। वादन के बाद उनके चर्मबंध या शलाकाएं (रॉड्ज) तथा आनक के तांत भी ढीले करके रखना चाहिए। चर्मबंध या शलाकाओं को ढीले करते अथवा कसते समय परस्पर विरुद्ध दिशा के चर्मबंध या शलाकाओं को ढीला करना अथवा कसना चाहिए। पणव एवं आनक के चर्म या प्लास्टिक के आवरणों तथा तांत को दीमक व चूहों से बचाना अतीव आवश्यक है। इसी लिए आनक एवं पणव थैली, संदूक या अलमारी में सुरक्षित रखना चाहिए।

आनक की शोभा-रश्मियां साफ-सुथरी और सफेद होनी चाहिए। पणव एवं आनक के पट्टे भी साफ और चमकीले करने चाहिए। सभी आनकवादकों की शारिकाओं का रंग साधारणत: एक सा हो, तो दिखने में उत्तम रहता है। वर्ष में कम से कम एक बार, सब आनक एवं पणव पूरी तरह से खोलकर साफ करना तथा फिर से जोड़कर कसना उचित रहेगा।

शंख एवं वंशी :- (या अन्य सुषिर वाद्य) वादन के पश्चात् इन वाद्यों को पानी से धोकर रखना चाहिए। प्रत्येक कार्यक्रम के पहले इनको चमकीले बनाना आवश्यक है। कार्यक्रम में वादन के पूर्व शंख को 'रश्मि' बांधना शोभावर्धक होगा।

उपवीतक :- 'उपवीतक' (रेशम या अन्य चमकीले कपड़े की रंगीन पट्टी) पहनने से घोष की शोभा तथा आकर्षकता और बढ़ती है। उपवीतक भिन्न-भिन्न रंगों के हो सकते हैं; किंतु एक प्रांत में एक ही रंग तथा प्रकार के उपवीतक रखना उचित होगा। इसे 'सव्य' पद्धति से धारण करना चाहिए।

यदि उपवीतक का उपयोग दायित्वदर्शक चिन्ह के रूप में करते हुए, वाहिनी-प्रमुख, अनिकिनी-प्रमुख, मुख्य-शिक्षक आदि उपवीतक धारण करते हैं, तो घोष में केवल घोष प्रमुख उपवीतक धारण करेगा।

प्रत्येक वाद्य के लिए अलग-अलग थैली या पेटिका होना उचित रहेगा। अन्य उपकरण जैसे, त्रिभुज, झल्लरी, शारिका, तालक, पट्टे, कसने की शलाकाएं इत्यादि तथा अलंकरण की वस्तुएं जैसी रश्मियां, शोभारशिमयां, उपवीतक आदि संदूकों या अलमारियों में सुव्यवस्थित ढंग से अलग-अलग रखना अपेक्षित है।

वाद्यों, उपकरणों तथा अलंकरण की वस्तुओं के योगक्षेम तथा व्यवस्थित अनुरक्षण की दृष्टि से एक सुयोग्य व्यक्ति को दायित्व सौंप देना उचित होगा।

6. स्वर लेखन

यहां संगीत शास्त्र के बारे में गहराई से जानकारी देने का प्रयास नहीं किया है। लेकिन आवश्यकता तथा व्याप्ति के अनुसार घोष रचनाओं की लेखनविधा में संगीत का स्पर्श किया है। घोष रचनाओं का लेखन करने के लिए उपयुक्त स्वरलिपि, उससे संबंधित शब्दों की परिभाषा तथा अन्य संबद्ध विषयों पर अब संक्षेप में विचार करेंगे।

1. **स्वर**:- वाद्यों के वादन से उत्पन्न कंपित वायुमंडल में ध्वनि तरंगों का निर्माण होता है; और ये ध्वनितरंग हमारे कर्णपटल पर टकराते हैं, तब हमें नाद सुनाई देता है। इन संगीत उपयोगी नादस्थानों को 'स्वर' कहते हैं। स्वर सात होते हैं, और इन्हें क्रमशः 'षड्ज', 'ऋषभ', 'गांधार', 'मध्यम', 'पंचम', 'धैवत' एवं 'निषाद' कहते हैं। इन सातों स्वरों का आपस में आनुपातिक संबंध है। षड्ज की कंपन संख्या के अनुपात में अन्य स्वर स्थानों की कंपन संख्या भी निश्चित रहती है।

स्वरों के इन आपसी आनुपातिक संबंधों के आधार पर ही पांच और स्वरस्थान प्राप्त होते हैं। इनमें चार स्वर स्थानों की कंपन-संख्या क्रमशः 'ऋषभ, गांधार, धैवत व निषाद' के निकट परंतु उनसे कुछ कम होती है। तथा पांचवे स्वर स्थान की कंपन संख्या 'मध्यम' के निकट परंतु उससे कुछ अधिक होती है। इन पांच स्वरों को 'विकृत' स्वर कहते हैं। ऋषभ के निकट होने वाला विकृत स्वर 'कोमल' ऋषभ', तथा इसी क्रम से 'कोमल गांधार','कोमल धैवत', एवं 'कोमल निषाद' ये चार विकृत स्वर 'कोमल' कहलाते हैं। 'मध्यम' का निकटवर्ती विकृत स्वर 'तीव्र मध्यम' कहलाता है। 'षंड्ज' और 'पंचम' स्वर विकृत नहीं होते; इस लिए उन्हें 'अचल स्वर' कहते हैं। इस प्रकार षड्ज, कोमल-ऋषभ, ऋषभ, कोमल-गांधार,गांधार, मध्यम, तीव्र-मध्यम, पंचम, कोमल-धैवत, धैवत, कोमल-निषाद, निषाद ऐसे सात शुद्ध और पांच विकृत स्वर मिलाकर बारह नाद स्थान प्राप्त होते हैं।

वंशी के स्वरों की कंपनसंख्या सापेक्षता से निम्नानुसार होती है।

स्वरस्थान	**कंपनसंख्या**	**स्वरस्थान**	**कंपनसंख्या**
षड्ज	240	पंचम	360
विकृत ऋषभ	256	विकृत धैवत	384
ऋषभ	270	धैवत	400
विकृत गांधार	288	विकृत निषाद	432
गांधार	300	निषाद	400
मध्यम	320	तार षड्ज	480
विकृत मध्यम	337-1/2		

2. स्वर सप्तक :- षड्ज से निषाद तक के स्वर समूह को 'स्वर-सप्तक' कहते हैं। गायक के साधारण बोल-चाल के स्तर पर जो स्वर निश्चित होता है, उसे उस गायक का 'मध्य-षड्ज' मानते हैं। वाद्यों का भी इसी प्रकार अपना एक निजी 'मध्य-षड्ज' होता है। इस मध्य-षड्ज से दुगुनी कंपन संख्या वाले नादस्थान को 'तार-षड्ज' तथा आधी कंपन संख्या वाले नादस्थान को 'मंद्र-षड्ज' कहते हैं। तार-षड्ज के अनुपात से बने ऋषभ, गांधार आदि स्वर 'तार-ऋषभ', 'तार-गांधार' तथा मंद्र-षड्ज के अनुपात में बने ऋषभ गांधार आदि स्वर 'मंद्र-ऋषभ', 'मंद्र-गांधार' आदि कहलाते हैं। मंद्र-षड्ज से मंद्र-षड्ज से मंद्र-निषाद तक का स्वरसप्तक 'मंद्र-सप्तक', मध्य-षड्ज से मध्य-निषाद तक 'मध्य-सप्तक' तथा तार-षड्ज से तार-निषाद तक 'तार-सप्तक' कहलाता है। मंद्र, मध्य एवं तार सप्तक के स्वरों की कंपन संख्या में आपस में 1:2:4 का अनुपात रहता है। आगे चल कर,'मंद्र' के नीचे से उपलब्ध होने वाले सात स्वरों को 'अतिमंद्र-सप्तक' तथा 'तार' से ऊपर होकर प्राप्त होने वाले सात स्वरों को 'अतितार-सप्तक' कहते हैं।

3. राग :- स्वरों के विशिष्ट संयोगों से रागों का निर्माण होता है। संयोग अनेक प्रकार से किए जा सकते हैं, किंतु जिस स्वर-संयोग में रंजकता होती है, वही 'राग' कहलाता है। किसी राग में प्रयुक्त होने वाले चढ़ते क्रम के स्वर

‘आरोह’ तथा उतरते क्रम के स्वर ‘अवरोह’ कहलाते हैं। राग के इन स्वरों में बार-बार प्रयुक्त होने से जो स्वर, विशेष महत्वपूर्ण बन जाता है, उसे ‘वादी’ स्वर कहते हैं। इस वादी-स्वर से 2:3 या 3:4 के अनुपात का जो स्वर होता है, उसे ‘संवादी’ स्वर कहते हैं। राग में कुछ स्वर वर्ज्य हो सकते हैं। इस आरोह-अवरोह, वादी-संवादी, वर्ज्यावर्ज्य का ध्यान रखकर स्वर का जो विन्यास किया जाता है, उसीसे ‘राग’ का अविष्कार होता है।

4) स्वराक्षर :- लेखन करते समय स्वरों का पूरा नाम, जैसा षड्ज, ऋषभ इ. लिखने के स्थान पर, सुविधा की दृष्टि से सांकेतिक अक्षरों का प्रयोग करते हैं, जिन्हें ‘स्वराक्षर’ कहते हैं। स्वराक्षर निम्न प्रकार के हैं।

षड्ज --- स
ऋषभ --- री
गांधार --- ग
मध्यम --- म
पंचम --- प
धैवत --- ध
निषाद --- नि

उसी प्रकार स्वर का सप्तक अथवा उनमें विकृति दर्शाने के लिए कुछ चिन्हों का उपयोग किया जाता है।

विकृत स्वराक्षर के नीचे खींची जाने वाली अधोरेखा, उस अक्षर के शिरोरेखा से समानांतर किंतु स्वराक्षर की खड़ी रेखा के पहले समाप्त होती है। इस प्रकार विकृत-चिन्ह का उपयोग करते हुए, बारह स्वरों का लेखन निम्नानुसार होगा :

स र̲ी री ग̲ ग म म̲ प ध̲ ध नि̲ नि

स्वरों का सप्तक कौन सा है, यह दर्शाने के लिए ‘◦’ (छोटा पोला वलय) इस चिन्ह का प्रयोग करते है। मंद्र-सप्तक के लिए यह चिन्ह स्वराक्षर के खड़ी रेखा के नीचे तथा तार-सप्तक के लिए स्वराक्षर के खड़ी रेखा के ऊपर लगाया जाता है। उसी प्रकार ‘अतिमंद्र’ के लिए ‘◦◦’ (दो छोटे पोले वलय) यह चिन्ह स्वराक्षरों के नीचे तथा ‘अति-तार’ के लिए स्वराक्षरों के

ऊपर लगाए जाते हैं। अति-मंद्र, मंद्र, मध्य, तार तथा अति-तार, सप्तकों के सातों स्वरों का लेखन निम्न प्रकार से होगा।

अति-मंद्र सप्तक :- स̥̥ र̥̥ी ग̥̥ म̥̥ प̥̥ ध̥̥ न̥̥ि
मंद्र सप्तक :- स̥ र̥ी ग̥ म̥ प̥ ध̥ न̥ि
मध्य सप्तक :- स री ग म प ध नि
तार सप्तक :- स̊ री̊ ग̊ म̊ प̊ ध̊ नि̊
अति-तार सप्तक :- स̊̊ री̊̊ ग̊̊ म̊̊ प̊̊ ध̊̊ नि̊̊

विकृति-चिन्ह तथा सप्तक-चिन्ह दोनों का यदि एक साथ उपयोग करना हो, तो मंद्र-सप्तक के लिए दोनों चिन्ह स्वराक्षर के नीचे एक ही स्तर पर लिखे जाते हैं तथा तार-सप्तक के लिए विकृति-चिन्ह स्वराक्षर के नीचे और ‘तार’ का चिन्ह स्वराक्षर के ऊपर लगाया जाता है। इन दोनों चिन्हों के एक साथ उपयोग के सभी संभाव्य प्रकार नीचे दिए हैं।

मंद्र सप्तक :- र̲̥ी ग̲̥ म̲̥ ध̲̥ न̲̥ि
मध्य सप्तक :- र̲ी ग̲ म̲ ध̲ नि̲
तार सप्तक :- र̲ी̊ ग̲̊ म̲̊ ध̲̊ नि̲̊

शंख वादन में कुल मिलाकर पांच स्वर होते हैं। उन का लेखन स्वराक्षरों में निम्नानुसार किया जाता है।

स̥ प̥ स ग प

शंख-स्वरों की कंपनसंख्या निम्न प्रकार की होती है ।

स्वराक्षर	**कंपनसंख्या**	**स्वराक्षर**	**कंपनसंख्या**
स̥	240	प	720
प̥	360	नि̲	480
स	480	स̊	960
ग	600		

5) ध्वन्याक्षर :- घोष के पणव, आनक, खर्जानक, त्रिभुज, झल्लरी जैसे ताल वाद्यों के वादन का लेखन भी किया जाता है। परंतु इनमें से प्रत्येक वाद्य का वादन एक विशिष्ट स्वर में ही होता है। इस लिए इन वाद्यों के वादन का लेखन सांकेतिक ध्वन्याक्षरों द्वारा किया जाता है, जिनके द्वारा उस वाद्य की ध्वनि-विशेषता भी व्यक्त होती है।

वाद्य	**ध्वनि**	**ध्वन्याक्षर**
पणव	ध्वंकार	ध्व
खर्जानक	धंकार	ध
आनक	तंकार	त
त्रिभुज	टंकार	ट
झल्लरी	झंकार	झ

शारिकाओं से आनक पर आघात करने से 'तंकार' उत्पन्न होता है। ('अनुतंकार' तथा 'रणन' का विवरण आगे दिया है) आनक के वादन विन्यास को व्यक्त करने के लिए 'त' के अतिरिक्त और भी ध्वन्याक्षरों का उपयोग किया जाता है, जिन का विवरण निम्नानुसार है।

अपेक्षित वादन		**ध्वन्याक्षर**
☛ दोनों शारिकाओं से एक साथ आघात :	....	थ
☛ दोनो शारिकाओं से एक साथ अनुतंकार :	....	थ्र
☛ प्रमुख तंकार के किंचित् पहले दूसरी शारिका से एक तंकार :	....	त्त
☛ प्रमुख तंकार के किंचित् पहले दूसरी शारिका से अनुतंकार सहित तंकार :	....	न्त
☛ केरवा रणन :	....	त्र
☛ खेमटा रणन :	....	त्र्र
☞ शारिकाएं परस्पर टकराने से आने वाली'टिक्' ध्वनि :	....	+

6) मात्रा :- संगीत लेखन में कौन सा स्वर बजेगा यह जैसे स्पष्ट लिखना अपेक्षित है, उसी प्रकार वह स्वर कितने समय तक बजेगा यह निर्देशित करना भी आवश्यक होता है। इस समय-मान के लिए 'मात्रा' शब्द का प्रयोग जाता है। संगीत में 'मात्रा' का अर्थ है कालमापन की इकाई। मात्रा के लिए कोई अलग चिन्ह नहीं है।

जब कोई स्वराक्षर या ध्वन्याक्षर, अकेला लिखा जाता है, तब उस का अर्थ है कि वह स्वर या ध्वनि एक मात्रा का है; जैसे-

स री ग म प ध नि त ट झ त्र

7) मात्रांश:- किसी भी रचना में सभी स्वर केवल एक मात्रा के ही नहीं रहते, अपितु उन का आधी, चौथाई, अथवा दुगुनी, तिगुनी मात्रा का वादन भी हो सकता है। आधी, चौथाई इ. एक से कम वाले मात्राओं को 'मात्राशं' कहते हैं; तथा उनके लेखन में एक 'मात्रा' के समय-मान में आने वाले सभी स्वराक्षरों-ध्वन्याक्षरों के नीचे एक कोष्ठक लगाया जाता है, जैसे -

यदि एक मात्रा 1/2 सेकंद की होने पर -

स - एक मात्रा में 1 स्वर [एक स्वर 1/2 सेकंद का होगा]

स री - एक मात्रा में 2 स्वर [हर एक स्वर 1/4 सेकंद का होगा]

स ग प - एक मात्रा में 3 स्वर [हर एक स्वर 1/6 सेकंद का होगा]

त त त त - एक मात्रा में 4 स्वर [हर एक स्वर 1/8 सेकंद का होगा]

रचना-शीर्षक के दाहिनी और ताल के पश्चात् दिया हुआ अंक (जैसे, 360, 240, 180, 120, 100 इ.) एक मिनट में उस रचना की कितनी मात्राएं बजेंगी यह दर्शाता है। उदा. 'खेमटा 360' ऐसा लिखा है, तो संचलन की गति एक मिनट में 120 रहेगी, किंतु मात्राएं 360 बजेंगी।

8) अवग्रह :- किसी भी स्वर को एक या अधिक मात्रा या मात्रांश के लिए दीर्घ करना हो, तो उस स्वर-विस्तार को 'ऽ' इस अवग्रह-चिन्ह से दर्शाया जाता है; तथा उसका उच्चार 'अ' होता है।

उदा. यदि एक मात्रा का कालांश 1/2 सेकंद हो, तो –

स री ग ऽ ... एक मात्रा ग-विस्तार [1/2 सेकंद]

स म ऽ ऽ ... दो मात्रा म-विस्तार [1 सेकंद]

प ऽ ऽ ऽ ... तीन मात्रा प-विस्तार [1/1/2 सेकंद]

स ऽ स स ... प्रथन ‘स’ का 1 मात्रांश विस्तार [1/8 सेकंद]

स ऽ ऽ ग ... प्रथन ‘स’ का 2 मात्रांश विस्तार [1/4 सेकंद]

9) यति :- किसी भी स्वर का (एक या अधिक मात्रा या मात्रांश के लिए) स्वर-विराम करना हो, तो उसे ‘यति’ कहते हैं। ‘-’ यह यति का चिन्ह है; तथा इसका उच्चार ‘य’ होता है।

उदा :- यदि एक मात्रा का कालांश 1/2 सेंकद हो, तो-

प म ध - : ‘ध’ के बाद 1 मात्रा यति [1/2 सेंकद]

स प - - : ‘प’ के बाद 2 मात्रा यति [1 सेंकद]

नि -- - : ‘नि’ के बाद 3 मात्रा यति [1-1/2 सेंकद]

त त -त : द्वितीय ‘त’ के बाद 1 मात्रांश यति [1/8]

त--त : प्रथम ‘त’ के बाद 2 मात्रांश यति [1/8+1/8=1/4 से.]

स- : ‘स’ के बाद 1 मात्रांश यति [1/4 सेकंद]

-प : प्रथम 1 मात्रांश यति [1/4 से.], बाद में ‘प’ [1/4 सें.]

अभ्यास की दृष्टि से प्रारंभ में यति के स्थान पर ‘य’ बोल सकते हैं। बाद में ‘य’ का उच्चारण छोड़कर, मन में उतने यति की गिनती करते हुए कहना या बजाना।

अवग्रह एवं यति एक साथ आने पर लेखन निम्नानुसार होगा ।

री म ऽ- : 1 मात्रा म-विस्तार के बाद 1 मात्रा यति
ग ऽ ऽ- : 2 मात्रा ग-विस्तार के बाद 1 मात्रा यति
स ऽ - ग : 1 मात्रांश स-विस्तार के बाद 1 मात्रांश यति

अवग्रह एवं यति को स्वर जैसा ही माना जाता है; इस लिए इनके चिन्ह भी स्वराक्षर-ध्वन्याक्षर के स्तर पर ही अंकित किए जाते हैं।

1०) ताल :- मात्राओं की विशिष्ट, नियमबद्ध एवं रंजक योजना को ‘ताल’ कहते हैं। मात्राओं के इस विन्यास में जब ह्रस्व-दीर्घ मात्रा, आवर्तनात्मक गति, अवसान अथवा वस्तुमान (वजन, भार), समानांतरता, यति तथा कुछ बोल होते हैं, तब इस योजना को ‘ताल’ की संज्ञा प्राप्त होती है। रंजकता के लिए मात्राओं का विशिष्ट ‘गट’ बनाना होता है, तथा उन गटों की विशिष्ट प्रकार की संरचना करनी होती है; जिसे ‘गण’ कहते हैं। आगे कुछ गणों को मिलाकर ‘ताल’ होता है। कुछ ताल-आवर्तन मिलाकर एक चरण बनता है। कुछ चरणों को मिलाकर एक विशिष्ट रचना बनती है। इस प्रकार क्रमशः बनने बाले मात्रा-समूहों को निम्न प्रकार से प्रस्तुत कर सकते हैं -

मात्रा → गट → गण → ताल → चरण → रचना

कितनी मात्राओं का गट बनेगा, कितने गटों का गण बनेगा या कितने गणों का ताल-आवर्तन बनेगा, यह उस ताल पर निर्भर होता है, जिसमें वह चरण अथवा रचना निबद्ध होती है। लेखन करते समय गट, गण एवं चरण के लिए कुछ वर्णन तथा चिन्ह निर्दिष्ट हैं, जो इस प्रकार हैं।

गट :- ताल के अनुसार एक या अधिक मात्राओं के समूह को ‘गट’ कहते हैं। गट-चिन्ह ‘ ,’ ऐसा होता है।

गण :- दो या अधिक गटों के समूह को ‘गण’ कहते हैं। गण-चिन्ह ‘ ।’ ऐसा होता है, जिसे ‘गण-दंड’ कहते हैं।

चरण :- दो या अधिक गण एकत्र आने पर अथवा गणों के ताल-आवर्तन से ‘चरण’ बनता है। चरण-चिन्ह ‘ ॥’ ऐसा होता है, जिसे ‘चरणदंड’ कहते हैं। चरण के प्रारंभ तथा अंत में चरणदंड अंकित करते हैं।

ताल असंख्य हैं, तथापि हमारी आवश्यकता के अनुसार केवल कुछ ही तालों के बारे में यहां विचार किया है। ‘ताल’ याने मात्राओं का विन्यास होने के कारण वहां कोई भी स्वर रहा तो भी ताल में अंतर नहीं आता।

केरवा ताल :- यह ताल चार मात्राओं का है। एक गट में एक मात्रा, ऐसे दो गटों का एक गण, तथा दो गणों से ताल पूरा होता है। संचलन के लिए इस ताल का प्रयोग होता है। प्रत्येक कदम पर एक मात्रा का वादन, याने एक मिनट में 120 मात्राएं तथा प्रत्येक मात्रा 1/2 सेकंद की होगी।

मृदंग बोल ॥धागे नाति। नक धिन। धाग नाति। नक धिन॥
शंख रचना श्रीराम ॥प़प़ सग। प़प़ सग। प़ऽप़प़ प़प़। स ऽग।
प्रथम चरण । प़प़ सग। प़प़ सग। प़ऽप़प़ प़ प़ । स- - :॥

इसके अलावा केरवा ताल के एक मिनट में 100 मात्राएं इत्यादि लय की मात्राएं भी हो सकती हैं, जिन का प्रयोग कुछ उद्घोषों में किया गया है।

खेमटा ताल :- यह ताल बारह मात्राओं का है। एक गट में तीन मात्राएं, ऐसे दो गटों का एक गण, और दो गणों से ताल पूरा होता है। इस ताल के गट समान होने पर भी यहां गट-चिन्हों का प्रयोग किया है, जिससे पढ़ने में सुविधा होती है। इस ताल का भी संचलन के लिए प्रयोग करते हैं। प्रत्येक कदम पर तीन-तीन मात्राओं का वादन, याने एक मिनट में 360 मात्राएं तथा प्रत्येक मात्रा 1/6 सेकंद की होगी।

मृदंग बोल ॥धा टे धी, ना धी ना। ता टे ती, ना धी ना। धा टे धी, ना धी ना। ता टे ती, ना धी ना॥
वंशी
रचना भारतम् ॥ ग ऽ प, ध प ऽ। ध ऽ प, ग री ऽ। ग ऽ प, ध प ऽ। ध ऽ ऽ, ऽ - प।
प्रथम चरण । ग ऽ प, ध प ऽ। ध ऽ प, ग री ऽ। प ऽ प, ग री ऽ। स ऽ ऽ, ऽ --: ॥

दादरा ताल :- यह ताल छः मात्राओं का है। एक मात्रा का एक गट, ऐसे तीन गटों का एक गण और दो गणों से ताल पूरा होता है। इस ताल का प्रयोग मंदचल के लिए किया जाता है। एक मिनट में मंदचल के साठ कदम डाले जाते हैं। प्रत्येक कदम पर एक ध्वंकार इस प्रकार एक मिनट में साठ ध्वंकार याने दादरा के साठ गणों का वादन होता है। एक मिनट में 180 मात्राएं और प्रत्येक मात्रा 1/3 सेकंद की होगी।

जब मंदचल के एक मिनट में 40 ध्वंकार आते हैं, तब दादरा के 120 मात्राओं का वादन होता है; और प्रत्येक मात्रा 1/2 सेंकद की होगी।

मृदंग बोल ॥ धा धिं ना। धा तिं ना। धा धिं ना। धा तिं ना॥
शंख रचना वरदा ॥ स ऽ स। प़ ऽ प़। ग ऽ ग। स ऽ -।
प्रथम चरण । ग ऽ ग। प ऽ ग। स ऽ प़। स ऽ - :॥

झपताल - यह ताल दस मात्राओं का होता है। प्रत्येक गण में पहली दो मात्राओं का एक, तथा अगली तीन मात्राओं का दूसरा ऐसे दो गट होते हैं। दो गणों से ताल पूरा होता है। 'आद्य सरसंघचालक प्रणाम' तथा उद्घोष का 'दीप-निर्वाण' झपताल में हैं। एक मिनट में 240 मात्राएं तथा हरेक मात्रा 1/4 सेकंद की अथवा एक मिनट में 120 मात्राएं और उस की हरेक मात्रा 1/2 सेकंद की होगी।

मृदंग बोल ॥ धी ना, धी धी ना। ती ना, धी धी ना। धी ना, धी धी ना। ती ना, धी धी ना॥
शंख
आद्य-सरसंघ ॥ प़ ऽ, स ग स। प़ ऽ, स ऽ स। प़ ऽ, स ग स। प़ ऽ, ग ऽ ग।
चालक प्रणाम । प ऽ, प ग प। प ऽ, ऽ ऽ -। ग ऽ, ग स ग। ग ऽ, ऽ ऽ - ।

रूपक ताल - यह ताल सात मात्राओं का होता है। प्रत्येक गण में तीन गट, पहला गट तीन तथा दूसरा एवं तीसरा गट दो-दो मात्राओं का होता है। इस प्रकार कुल मिलाकर एक गण में सात मात्राएं तथा दो गणों से यह ताल पूरा होता है। 'स्वागत प्रणाम' की रचना रूपक ताल में। एक मिनट में 120 मात्राएं तथा हरेक मात्रा 1/2 सेंकद की होती है।

मृदंग के बोल ॥ ती ती ना , धी ना , धी ना ॥
शंख
स्वागत प्रणाम ॥ॐ॥ स ऽ प़ , सग प़स , गप सग।
। प ऽ - , प गस , प़ सग।

झपताल एवं रूपक ताल में पणव के ध्वंकार का निम्न प्रकार से वादन किया जाता है। उसी पद्धति से झल्लरी तथा त्रिभुज का वादन करना।

झपताल ॥ ध्व – , ध्व – – । ध्व – , ध्व – – ॥

रूपक ताल ॥ ध्व – – , ध्व – , ध्व – । ध्व – – , ध्व – – , ध्व – – ॥

11) रणन – शारिकाओं से बजाए जाने वाले आनक जैसे वाद्यों की यह विशेषता है कि, तंकार का वादन करने के लिए शारिका को एक बार पटकने पर यदि उसे नियंत्रित न किया, तो वह दो-चार बार उस वाद्य (के आवरण) पर उछलती है और उसके कारण निकलने वाला नाद मुख्य तंकार से उत्तरोत्तर क्षीण होते जाता है। ये अन्य नाद 'अनुतंकार' कहलाते हैं। अपने हाथ पर योग्य नियंत्रण रख कर,

1. केवल तंकार, 2. एक तंकार एवं एक अनुतंकार अथवा 3. एक तंकार एवं दो अनुतंकार इस प्रकार वादन कर सकते हैं।

केरवा के एक मात्रा में चार तंकार का वादन करते हैं। उस प्रत्येक तंकार के साथ यदि एक अनुतंकार का वादन किया तो एक मात्रा में (चार तंकारानुवर्ति अनुतंकार ऐसे) आठ तंकारों की मालिका सुनाई देगी। इस प्रकार के मालिका के साथ-साथ तांत के प्रत्याघाती कंपनों को मिलाकर 'रणन' बनता है। 'केरवा' में इस प्रकार का रणन बजाया जाता है। रणन एक या अनेक मात्राओं तथा/अथवा मात्रांशों का भी हो सकता है।

खेमटा ताल में एक मात्रा में एक तंकार और दो अनुतंकार ऐसे तीन-तीन तंकारों की मालिका सुनाई देगी। 'खेमटा' में इस प्रकार का रणन बजाया जाता है। खेमटा ताल में रणन यह संघ का वैशिष्ट्य है।

अन्य तालों में रणन 'केरवा' ताल जैसा बजेगा। ताल के अनुरूप तंकारों की संख्या रहेगी।

केरवा और खेमटा ताल के रणन निम्नानुसार लिखे जाते हैं।

लेखन प्रकार विवरण

[संकेत- 'दा' याने दाहिने हाथ से; 'बा' याने बाएं हाथ से।]

केरवा रणन (120)

त्र 1/2 सेकंद (1 कदम) रणन वादन। $\overset{\text{दा}}{\text{त}}\ \overset{\text{बा}}{\text{त}}\ \overset{\text{दा}}{\text{त}}\ \overset{\text{बा}}{\text{त}}$ इससे एक मात्रा में चार तंकार आते हैं। यही एक तंकार के साथ एक अनुतंकार के क्रम में बजाने पर $\text{त}^{\text{त}}\ \text{त}^{\text{त}}\ \text{त}^{\text{त}}\ \text{त}^{\text{त}}$ इस प्रकार होगा। यही वादन 'त्र' से दर्शाते हैं।

त्र – 1/4 सेकंद (1/2 कदम) रणन वादन। त त – – याने त्र –

त्र ऽ 1 सेकंद (2 कदम) रणन वादन।

इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

1. त त्र 2. – त्र 3. त्र त 4. त – – त्र
5. त्र – त त 6. त त – त्र 7. त्र ऽ त

खेमटा रणन (360)

दा
त्र एक तंकार के साथ दो अनुतंकार, 1/6 सेकंद रणन वादन। ($\overset{\text{दा}}{\text{त}}{}^{\text{त त}}$ = त्र)

दा बा दा
त्र ऽ ऽ 1/6 + 1/6 + 1/6 = 1/2 सेकंद (1 कदम) रणन वादन।

दा बा दा बा दा बा
त्र ऽ ऽ , ऽ ऽ ऽ = कुल मिलाकर 1 सेकंद (1 कदम) रणन वादन।

इसके कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं –

दा बा दा बा दा बा दा बा दा बा दा बा दा बा दा बा दा बा
1. । त्र ऽ ऽ, ऽ ऽ त। 2. । त्र ऽ ऽ, ऽ त । 3. । त्र ऽ ऽ, त – – ।

दा बा दा बा दा बा　　दा बा दा बा दा बा　　दा बा दा बा दा बा

4. । त्र ऽ त, त – – ।　　5. । त्र त –, त्र त – ।　　6. । त – त्र, त – त्र ।

(गट आरंभ की मात्रा पर दाएं-बाएं हाथ से हलके आघात से वादन करने पर खेमटा ताल की विशेषता स्पष्ट होती है)

12) लय :– एक मिनट में बजाएं जाने वाली मात्राओं की संख्या उस रचना का 'लय' होती है। केरवा तथा खेमटा संचलन-प्रधान ताल है, जब कि, दादरा मंदचल एवं व्यायामयोग के लिए उपयुक्त है। केरवा व खेमटा ताल का हर दूसरे आधे सेकंद में 'यति' के साथ वादन करने पर उन का व्यायामयोग के लिए प्रयोग हो सकता है। विशेष आवश्यकता के अनुसार केरवा, खेमटा, दादरा तालों का वादन विलंबित या द्रुत लय में भी किया जा सकता है।

13) संक्षेप चिन्ह :–

पुनरावृत्ति :– 1. जब किसी रचना में एक के बाद आने वाले कोई भी दो गणों का वादन बिलकुल समान हो, तब प्रथम गण के लेखन के बाद, दूसरे गण के लिए उन्हीं अक्षरों को दोहराने के बदले, वहां 'गणपुनरावृत्ति' का '%' ऐसा चिन्ह लिखा जाता है; जिससे उक्त गण का दोहराना सूचित होता है। उदा.

आनक

रचना केदार ॥ त त्र, त त त त। % । त त । त त त त, त त त त।

प्रथम चरण ॥ त त्र, त त त त। % । त त । त त त त, त :।

2. जब कोई भी लगातार आने वाले दो गण, उनके अगले दो गणों से बिलकुल समान हों, तो उस के लिए '%' ऐसे अलग चिन्ह का उपयोग किया जाता है। उदा.

आनक

रचना शिवरंजनी ॥ त्र ऽ । त त, त त । % ।

प्रथम चरण । % । त्र ऽ । त – :॥

रचना का लेखन शीघ्र होने के लिए उपरोक्त दो चिन्हों के प्रयोग कर सकते हैं।

3. संपूर्ण चरण के वादन का पुनरावर्तन जब अपेक्षित होता है, तब चरण-समाप्ति दर्शाने वाले चरण-दंड के पूर्व ':' इस प्रकार से दो पोले वलय लिखे जाते हैं; जिसे 'पुनश्चरण' भी कहते हैं। उदा.

आनक

रचना किरण ॥ त त्र । त त । त त्र, त त्र, । त त, त त, ।

प्रथम चरण ॥ त त्र । त त । त्र ऽ । त – :॥

4. कई बार पुनश्चरण अपेक्षित होता है, परंतु अंतिम (प्राय: एक या दो) गणों का वादन भिन्न प्रकार से अपेक्षित हो सकता है। ऐसी स्थिति में चरण का आवर्तन-चिन्ह तथा भिन्न वादन का निर्देश भी निम्न प्रकार से दिए जाते हैं। उदा.

शंख

रचना चेतक । पऽपप स ग [1 स ऽ – :] [2 स ऽ – । पपपप पपपप]।

दूसरा चरण अंत्य [सससस सससस गगगग गगगग]। प ऽ – ।

इसे 'क्रमभेद' चिन्ह कहते हैं।

उपरोक्त उदाहरण शंख की 'चेतक' रचना के अंतिम चरण में आता है। इस का अर्थ है कि चरण प्रथम बार बजाते समय चरणारंभ से वादन करते हुए '1' के अंतर्गत आए हुए भाग का वादन करना। वहां 'पुनश्चरण' चिन्हांकित चरणदंड है। इस लिए चरणारंभ से पुनश्चरण का वादन प्रारंभ करते हुए, अंत में '1' के स्थान पर '2' का वादन करना अपेक्षित है।

14) स्वरांतर :– 1. सांतर :– 'स री ग म' इन स्वराक्षरों के साथ इन स्वरों का हम उच्चारण करें, या उसी प्रकार वाद्यों पर वादन करें, तो हमारे ध्यान में आएगा कि व्यंजन के उच्चारण के कारण एक स्वर तथा दूसरे स्वर के मध्य अत्यल्प काल के लिए नाद में खंड (कण-यति) पड़ता है। शंख, वंशी शृंग के वादन में यह कण-यति जिव्हा या कंठ के स्नायुयों की हलचल से होती है । इन सुषिर वाद्यों में 'जिव्हाघात' (Tonguing) के द्वारा हरेक

स्वर की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए वादन करना चाहिए। इस गायन या वादन को 'सांतर' गायन या वादन कहते हैं। स्वरांतर का अन्य चिन्ह न लिखा हो, तो वादन 'सांतर' है ऐसा समझना चाहिए।

2. निरंतर :– जब वादन 'सांतर' न हो, तब वह 'निरंतर' होता है। शंख, वंशी, शृंग आदि में 'जिव्हाघात' (Tonguing) का प्रयोग न करते हुए, एक ही फूंक में स्वर बदलने से 'निरंतर' वादन होता है। निरंतर वादन व्यक्त करने के लिए उन स्वराक्षरों के ऊपर उलटा अर्ध-चंद्राकृति कोष्ठक बनाया जाता है। उदा.

वंशी ध्वजारोपणम्
प्रथम चरण ॥ॐ॥ सं ऽ सं, । ध ऽ ध । ग ऽ म ग । री ऽ स :॥

यहां 'म ग' पर 'निरंतर-चिन्ह' लगाया है, इस लिए यहां 'ग' का 'निरंतर' में गायन या वादन होगा। संगीत का गायन-वादन साधारणत: निरंतर-प्रधान रहता है। किंतु संचलन, व्यायाम-योग आदि प्रांगणीय, कार्यक्रमों के लिए ही घोष का संयोजन होने के कारण, घोष-रचना के स्वर सांतर-प्रधान रहते हैं। तथापि रंजकता की दृष्टि से कुछ रचनाओं के कुछ स्वर निरंतर भी बजाए जाते हैं।

3. कण स्वर :– मुख्य स्वर का वादन करते समय उसके किंचित् पहले या बाद में किसी अन्य स्वर का अत्यल्प, स्पर्श-मात्र वादन अपेक्षित हो, तो इन अत्यल्प काल-मान के स्वर को 'कण-स्वर कहते हैं। स्वराक्षर को आधा लिख कर 'कण-स्वर' दर्शाया जाता है। उदा.

वंशी : स्, र्, ग्, म्, प्, ध्, न् आदि
आनक : 'त्र' में 'त्', 'त्त' में 'त्' आदि
वंशी
वंदेमातरम् ॥ प म्ग री । ग म प म । प ऽ । ऽ – म म ॥

4. आघात :– कभी कभी किसी विशिष्ट स्वर को अधिक जोर से बजाकर आघात जैसा प्रभाव उत्पन्न करना अपेक्षित होता है। इस लिए स्वर के ऊपर '^' ऐसा 'आघात-चिन्ह लगाया' जाता है। उदा.

वंशी
रचना आसावरी ॥ ग̂ ग̂ ग । ग̂ ग̂ ग । स री ग री । स री म ।
तीसरा चरण ॥ प̂ प̂ प । प̂ प̂ प । म प ध प । म प ध ।

आघात के अन्य प्रकार, जिन का उपयोग संचलन की रचनाओं में नहीं होता है, निम्नानुसार है।

प इस स्वर की ध्वनि प्रारंभ में कम तथा धीरे धीरे अंत में बढ़ानी चाहिए ।
ग इस स्वर की ध्वनि आरंभ में ही अधिकतम तथा अंत में धीरे धीरे न्यूनतम होगी ।
म इस स्वर की ध्वनि क्रमश: प्रारंभ में न्यूनतम, मध्य में अधिकतम तथा अंत में फिर से न्यूनतम आएगी।

परिणामकारकता बढ़ाने के लिए उद्घोषों में इन चिन्हों का तथा आघातयुक्त वादन का प्रयोग करते हैं ।

15) लयभंग :– सारा वादन विशिष्ट ताल तथा लय में होते हुए भी, कभी-कभी ऐसा हो सकता है कि कोई विशिष्ट (विशेषत: अंतिम) स्वर का, उसके लिखित कालमान से, अधिक कालमान के लिए वादन करना पड़ता है। इसे स्पष्ट करने के लिए उस स्वराक्षर के ऊपर '→' ऐसा 'लय-भंग' का चिन्ह लगाया जाता है। उदा.

शंख
संघोष ॥ॐ॥ – – –, – – प़ ॥ स ऽ स, ग ऽ ग । ग स ग , प⃗ ऽ ऽ॥

16. दीर्घयति :– रचनाओं में वादन-विराम के लिए प्रयुक्त 'यति-चिन्ह' एक ही मात्रा का विराम व्यक्त करता है। यदि यति एक मात्रा से भी अधिक हो, तो उसे दिखाने के लिए '⌊2⌋' इस 'दीर्घ-यति' चिन्ह का प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ है दो गणों की यति या विराम। '2' के स्थान पर अन्य अंक लिखकर उतने अंको के गणों की यति व्यक्त की जा सकती है। उदा.

शंख-रचना भरत-दूसरे चरण के बाद आठ गणों की दीर्घ-यति।

॥ स स स । स ऽ स । प़ ऽ ऽ, स ऽ ऽ । ग ग ग, ग ऽ ग । स ऽ ऽ, ग ऽ ऽ ।
॥ प प प । प ऽ प । प ऽ ग, स ऽ ग । प प प, प़ ऽ प़ । स ऽ ऽ, स – –:॥8॥

(दीर्घ यति में आनक या अन्य वाद्यों का वादन हो सकता है।)

17) रचना लेखन :- प्रांगणीय और सांघिक वादन के लिए उपयुक्त ऐसी जो स्वरावलि बनायी जाती है, उसे 'रचना' कहते है। रचनाओं में अनेक चरण हो सकते हैं। अच्छी रचना का प्रत्येक चरण अपने आप में ही एक सांगितिक वाक्य (Musical Sentence) अथवा रचना का स्वयंपूर्ण भाग जैसा रहता है। रचना के संबंध में आनेवाली संज्ञाओं तथा लेखन की पद्धति नीचे दी गयी है।

ध्रुव पद:- यह प्रत्येक चरण के बाद गाया, बजाया जाता है। इसका संक्षिप्त रूप ' ॥ध्रु॥ ' ऐसा लिखा जाता है। रचना के जिन पंक्तियों के अंत में यह चिन्ह होगा, उन पंक्तियों का गायन, वादन चरण के बाद किया जाता है।

प्रस्ताव पद:- रचना का वृत्त तथा शैली सूचित करने वाले चरण को 'प्रस्ताव-पद' कहते हैं। यह रचना के प्रारंभ में आता है। इस का संक्षिप्त रूप ' ॥ प्र. ॥' ऐसा हैं।

सेतु पद :- रचना का वृत्त और शैली में बदल करते समय आने वाला चरण। इस का संक्षिप्त रूप ' ॥ से॥ ' ऐसा है।

रचना-लेखन के पहले शीर्षक लिखते हैं। इस के प्रथम (याने बाएं कोने के) भाग में 'वाद्य का नाम', मध्य में 'रचना का नाम' तथा दाहिने कोने में 'ताल व लय' का उल्लेख करते हैं। यदि एक ही राग की एक से अधिक रचनाएं तथा उनका कोई 'विशेष नाम' होने पर, रचना-संज्ञा के बाद कंस में 'राग का नाम' लिखा जाएगा।

रचना-लेखन के प्रारंभ में नाद-ब्रह्म का आद्य-अक्षर ' ॥ॐ॥' ऐसा लिखना चाहिए। सामान्यतः एक पंक्ति में चार गण लिखे जाते हैं। इसी पद्धति से अखिर तक रचना-लेखन करना चाहिए। उदा.

वंशी ध्वजारोपणम् (रागेश्री) केरवा - 120

॥ॐ॥ सं ऽ सं । ध ऽ ध । ग ऽ म ग । री ऽ स :॥
॥ ऩि स ग । म ध ध । ग ग म ग । री ऽ स :॥
॥ ऩि स ग । म ध ध । ग म ध । नि सं सं ।
। गं ऽ गं । सं ऽ सं । गं ऽ गं । सं ऽ नि ।
। ध ऽ ग । म ध नि ॥ सं ऽ सं । ध ऽ ध ।
। ग ऽ म ग । री ऽ स:॥ सं ऽ ऽ । ऽ – – ॥

* * *

उपसंहार

सामूहिक समता, संचलन, योग व्यायाम आदि प्रांगणीय कार्यक्रमों में सांघिकता, तालबद्धता तथा प्रदर्शनीयता लाने की महत्त्वपुर्ण भूमिका घोष निभाता है। पाश्चात्य वाद्यों के समवेत अनेक भारतीय वाद्यों का समायोजन करते हुए विगत कई दशकों में संघ ने घोष की समग्र संकल्पनाएं, रचनाएं तथा उसके विविध पहलुओं का भारतीयकरण करने में गणनीय प्रगति की है। संगीत का समग्र विवरण प्रस्तुत करना यह न इस पुस्तिका का उद्देश्य है, न ही उस की आवश्यकता। संघ की आवश्यकताओं के अनुरूप घोष की जो पद्धति विकसित हुई है वही यहां पर दी गयी है।

इसमें भी सब बातों का समावेश नहीं किया जा सकता। पुस्तिका के अनुसार वादन करनेवाले कुशल, अनुभवी शिक्षकों से सीखना चाहिए। उस कार्य में सहायक हो, इतना ही इस पुस्तिका का सीमित उद्देश्य रखा गया है।

पुस्तिका को अधिक उपयुक्त बनाने की दृष्टि से आप के सुझावों का स्वागत है।

* * *